श्रीसीतारामाभ्यां नमः श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

श्रीराम स्वभाव

★ श्रीराम कर-कंज ★

मानसान्तगर्त श्रीराम स्वभाव-विवेचन ★

★ ले०-मानस तत्वान्वेषी, वेदान्तभूषण ★

डॉ० पं० रामकुमारदासजी रामायणी महाराज डी० लिट्०

★ संपादक, संशोधक एवं संवर्धक ★

मानसमर्मज्ञ-आचार्यप्रवर

पं० श्रीसच्चिदानन्ददासजी रामायणी महाराज

महान्त-वरविश्रामबाग, श्रीरामग्रन्थागार,

मणिपर्वत-श्रीअयोध्याधाम

★ प्रकाशक ★

पं० सुन्दरराघवदास रामायणी (सुदर्शन दूबे)

ग्रा०-चन्दनपुरा, पो०-तोरनी, जि०-रोहतास (बिहार)

[शुभचिन्तक-वरविश्रामबाग]

पुनर्मुद्रणार्थ न्यौ०-८/००

श्रीसीतारामाभ्यां नमः श्रीगुरवे नमः श्रीरामानन्दाचार्यायनमः

सम्पादकीय वक्तव्य

ले०-मानसमर्मज्ञ-पं० सच्चिदानन्ददास रामायणी

महान्त-वरविश्रामबाग, श्रीरामग्रन्थागार, मणिपर्वत-श्रीअयोध्याधाम

जाकी कीर्ति-कौमुदी सुख्यात् विद्ववर्ग बीच,
सर्वशास्त्र-विज्ञ वोधवानोंमें शुमार थे ।
अनभिज्ञ अपढ़ गवाँरको बनाये विज्ञ,
व्यास कथाबाचक बनानेमें उदार थे ।।
राम कृष्ण देव द्रोही नास्तिक कुतर्की कोही,
शास्त्र-अर्थ करिके छुड़ाते जो खुमार थे ।
'आनन्द' अपार होत नमत पदारविन्द,
मेरे पूज्य गुरुदेव रामके कुमार थे ।।

[लेखकस्य]

अनन्त ब्रह्माण्डोंके ईश्वर परमात्मा श्रीरामजीकी कृपासे श्रीगुरुदेव रचित 'श्रीराम स्वभाव' नामक इस लघु ग्रन्थका द्वितीय संस्करण हो रहा है । इसमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके स्वभावके सम्बन्धमें पूर्ण विवेचन हुआ है। श्रीराम कथाके तथाकथित ज्ञाताओंके अनुसार जगतमें यह प्रवाद रूपमें ख्यात् हो गया है कि भगवान् श्रीरामने वानरराज बालिको छिपकर मारा था और बालिकी मृत्युके पश्चात् उसकी विधवा पत्नी तारादेवीको वानरराज सुग्रीवने अपनी पत्नी बना लिया । इन भ्रान्तपूर्ण प्रवादोंको कभी-कभी कुछ विद्वान भी उन अल्पज्ञ विद्वानोंका बहुमत देखकर तथा स्वयं भी शास्त्रानुशीलन न करनेसे सत्य मान लेनेकी भूलें किया करते हैं ।

उन भूलोंका परिमार्जन इस छोटेसे निवन्धमें श्रीगुरुदेव महाराज वेदान्तभूषणजीने किया है। श्रीरघुनाथजीने बालिको छिप कर मारा था—इसका प्रतिपादन करनेवाले अनभिज्ञोंका प्रवल तर्क यह है कि वानरराजको यह वरदान प्राप्त था कि जो उसके

सामने युद्ध करेगा उसका आधा बल उसे प्राप्त हो जायेगा। इसी कारणवश सभी योद्धा उससे युद्धके पश्चात या तो हारकर भाग जाते थे या मार दिये जाते थे। इसीसे श्रीरामजीने छिप कर उसे मारा था।

पर यहाँ श्रीरामग्रंथागारमें रामचरित्रपरक सैकड़ों ग्रन्थ विद्यमान हैं किन्तु कहीं भी बालिको ऐसा वरदान पानेका संकेत तक नहीं है। यदि उसे ऐसा कोई वरदान प्राप्त होता तो दुंदुभी के साथ एक माह तक युद्ध नहीं करना पड़ता। अतः बालिको आधा बल लेनेकी कोई बात नहीं दिखायी पड़ती है। फिर भी 'दुर्जनतोष' न्यायानुसार यदि यह मान ही लिया जाय कि बालिको ऐसा वरदान प्राप्त भी था तो परब्रह्म परमात्मा श्रीरामके असीम बल का अर्ध भाग एक सामान्य जीव कैसे ग्रहणकर सकता था ? अतः सर्व प्रकारेण यह सिद्ध है कि श्रीरघुनाथजीने बालिको छिपकर नहीं मारा था।

कुछ लोग बालिको मारने एवं सुग्रीवकी रक्षामें भी भगवान् श्रीरामपर विषमताका आरोप लगाते हैं। इसका भी इस छोटेसे ग्रन्थमें तथ्यपूर्ण विवेचन हुआ है। कई बातोंकी तथ्यपूर्ण जानकारी इससे प्राप्त होती है—

१— भगवान् श्रीरामने बालिको सामने युद्धमें मारा था।
२— वानरराज सुग्रीवकी अपनी रुमा नामक पत्नी थी। उन्होंने कभी भी बालि पत्नी ताराको पत्नी रूपमें ग्रहण नहीं किया।
३— भगवान् श्रीरामने बालिका जो संहार किया वह न्यायानुमोदित था।
४— भगवान् अपराधीपर भी कृपा तो करते हैं किन्तु भक्तोंके अपराधीको मारते भी हैं। हाँ अपने अपराधोंको वे क्षमा कर देते हैं। जैसा कि देवगुरु बृहस्पतिका मन्तव्य है—

'सुनु सुरेश रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ।'

(शेष पृष्ठ ३२ पर पढ़ें)

।। श्रीमते रामानन्दाय नमः ।।

★ श्रीराम स्वभाव ★

नित्य करौं अपराध अनेकन,

नाथ कहाँ मम पाप को ठौरहिं ।

तौहुँ सुनौ यह दीन दयाल,

स्वभाव क्षमा गुण-सागर रौरहिं ।।

आपको दास कहाइ 'कुमार',

बिहाइ तुम्हें नित माँगत कौरहिं ।

कीन्हीं दया ढरि ताहू पँ नाथ,

अनाथन नाथ लखौं नहिं औरहिं ।।

श्रीरामचरितमानसमें यद्यपि श्रीभरत, लक्ष्मण, सीताजी आदि सभी स्त्री-पुरुष पात्रोंके स्वभावकी यत्र-तत्र प्रसङ्गोपात्त चर्चा हुई है । परन्तु श्रीरामभद्रजूके स्वभावकी चर्चा आलोचना तो प्रचुर रूपसे हुई है । भगवान् शङ्करने तो एक सिद्धान्त ही अटल कर दिया है-(५।३४।३)

'उमा राम सुभाव जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना।।'

जिसने किसी भी प्रकार श्रीरामजीके स्वभावको हृदयङ्गम कर लिया, उसे फिर कभी भी भगवद्भजनके अतिरिक्त दूसरा कोई भी कार्य रुचता ही नहीं । रामायणीय लीला पात्रोंमें स्वभावको जानने वालोंमें कुछ ब्यक्तियोंकी चर्चा है । कुछ के लिये तो स्पष्ट कहा गया है कि अमुक-अमुक ब्यक्ति श्रीरामजीके स्वभावको जानते हैं ! और कुछ महाभागोंको श्रीराम स्वभावकी जानकारी प्रसङ्गतः ज्ञात होती है । स्वयं श्रीमुखकी वाणी उद्धृत है-(६।४८।१)

'सुनहु सखा निज कहउँ स्वभाऊ। जान भुशुण्डि शंभु गिरिजाऊ।'

यहाँ श्रीभुशुण्डि, शम्भु और गिरिजाजीका नाम है–(३।४२।३)
'जानहु मुनि तुम मोर स्वभाऊ। जन सन कबहुँ कि करउँ दुराऊ ॥'

यहाँ नारदजीको श्रीराम स्वभावका ज्ञाता कहा गया है। इसी तरह उत्तरकांडमें श्रीहनुमानजीको श्रीराम स्वभावका ज्ञाता कहा है–

'तुम जानहु कपि मोर स्वभाऊ ॥ (७।३६।७)

और शिवजीके लिये तो बार-बार आया है–

'कहौं स्वभाव सत्य शिव साखी ॥'(२।२६४।१)

इत्यादि तो श्रीरामजीके ही शब्द हैं और भी अनेक ऐसे लोग हैं जिन्होंने स्वयं ही प्रकारान्तरसे अपने श्रीराम स्वभाव ज्ञानकी स्वीकृति दी है। जैसे देवगुरु बृहस्पतिजी–

'सुनु सुरेश रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ ॥'
जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई ॥'

महाराज दशरथजी–(२।०।८)[२।२१८।५-६]

क–'रामरूप गुन शील सुभाऊ। प्रमुदित होहिं देखि सुनि राऊ।'
ख–'जासु सुभाव अरिहु अनुकूला ॥' (२।३२।८) (२।१४८।६)
ग–'रामरूप गुनशील सुभाऊ।' सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ॥'

महारानी श्रीसुमित्राजी–

'समुझि सुमित्रा राम सिय रूप सुशील स्वभाव।' [२ ७३]

परम वेदज्ञ रघुकुल गुरु वशिष्ठजी–

क–'बरनि राम गुन शील स्वभाऊ।' [२।१०।१]
ख–'कहत राम गुन शील स्वभाऊ।' [२।१७१।७]
ग–'मुनि पुलके लखि शील सुभाऊ।' [२।२६०।७]

वेदान्तियोंके अग्रगण्य महाराज जनकजीका कितना सुन्दर कथन है–

'राम सत्यब्रत धर्म रत, सब कर शील सनेहु ।
संकट सहत सकोच बश, कहिय सो आयसु देहु ।।'[२।२९१]

श्रीअवधबासीगण भगवान् श्रीरामके लिये क्या कहते हैं–[२।२७४।५–६]

'लरिकाईहिं ते रघुबर बानी । पालत नीति प्रीति पहिचानी ।।
शील सकोच सिन्धु रघुराऊ । सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ ।।'
'शिशुपन ते पितु मातु बन्धु गुरु, सेवक सचिव सखाऊ ।
कहत राम विधु बदन रिसौंहें, सपनेहुँ लख्यों न काऊ।।'[वि०प०

श्रीजानकीजी—
'राम सुभाव सुमिरि वैदेही ।' [६।९९।२]

सुग्रीव सैनिक महाभाग वानरगण–[५।५०।२]
'निज जन जानि ताहि अपनावा । प्रभुसुभाउ कपिकुल मनभावा।।'

शुक–सारण–[५।५२।१],]५।५७।५]
क–'प्रगट बखानत राम सुभाऊ । अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ।।'
ख–अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोककर राऊ।।'

निषादराज गुह तो अपने समस्त समाजमें गान करते हैं–
'प्रभु सुभाव परिजनहिं सुनावा ।' [७।२०।५]

काकर्षि श्रीभुशुन्डिजी क्या कहते हैं देखने ही योग्य है–
क–सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ।
ख–'शिव अज पूज्यचरन रघुराई। मो पर कृपा परम मृदुलाई ।।'
ग-'अस सुभाव कहुँ सुनउँ न देखौं।केहि खगेश रघुपतिसम लेखौं।।'
[७।७४।५], [७।१२४।३–४]

त्रिभुवन गुरु श्रीशिवजी– 'अति कृपालु रघुबीर सुभाऊ ।'

त्रिदेव दिकपाल एवं सूर्य–
'बिधि हरिहर दिशिपति दिनराऊ । जे जानहिं रघुबीर सुभाऊ।।'
'अवलोकि शीलसुभाव प्रभु को बिबुध मन प्रमुदित भये ।'
मानस बक्तागण–'करुनामय मृदु रामसुभाऊ ।' [२।४०।३]

श्रीगोस्वामीजी तो स्पष्टरूपेण उद्घोष करते हैं—

'रीझत राम सनेह निसोते।' (बा० २८।१०)

'कहत नसाइ होइ हिय नीकी। रीझत राम जानि जन जी की।।'

रहति न प्रभुचित चूक कियेकी। करत सुरति सय बार हिये की।।'

'राम निकाई रावरी, है सबही को नीक। १।२९।४–५)

श्रीराम स्वभावके सर्वाधिक ज्ञाता वैकुण्ठाधीश विश्वम्भर भरतजीका कितना सुन्दर कथन है—

क–'जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भइ मोहि कारण सकल उपाधी'

तदपि शरन सनमुख मोहिं देखी। छमिसब करिहहिं कृपाबिशेखी।।

शील सकुच सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ।।

अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा।' (२।१८२।३–६)

ख–'राम सुभाउ सबहिं सुखदाता।' (२।१९९।६)

ग–'जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ।' (२।२३३।६)

घ–'मैं जानउँ निजनाथ स्वभाऊ। अपराधिहु पर कोप न काऊ।।'

ङ–'देव देवतरु सरिस स्वभाऊ। सनमुख बिमुख न काहिहु काऊ।।'

च–'जनअवगुन प्रभुमान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल स्वभाऊ।।'

[२।२५९।५, २।२६६।८, ७।१०।१६]

इस तरह श्रीरामस्वभाव जानने वालोंमें श्रीशिवजी, शिवाजी, भुशुण्डिजी, बृहस्पतिजी, कुछ देवतागण, महाराज दशरथजी, महारानी सुमित्राजी, भरतजी, वानर सैनिक, विभीषणजी, शुक–सारण, वशिष्ठजी, जनकजी, अयोध्यावासीगण श्रीसीताजी, निषादराज गुह एवं श्रीगोस्वामीजी हुए। अन्वेषण करनेपर और भी महाभाग मिल सकते हैं अब हमें यह जिज्ञासा हो रही है कि श्रीरामजीके स्वभावमें ऐसी कौनसी विशेषता है कि जिसके जानने वालोंको हरि भजन छोड़ कर और कुछ भी नहीं भा सकता ? तो उपर्युक्त उद्धरणोंसें एक आधको छोड़कर प्रायः सबमें एक ही बात पायी जाती है।

और वह यह कि श्रीरामजीका स्वभाव सरस कोमल आदि हैं, पर इससे तो कोई विशेष प्रभाव पड़ता नहीं । विशेषता तो इनमें मालूम पड़ती है कि—

'अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा ।' [२।१८२।६]
'राम स्वभाव सबहि सुखदाता ।' [२।१६६।६]
'अपराधिहु पर कोप न काऊ ।' [२।२५६।५]
'जन अवगुन प्रभु मान न काऊ ।' [७।०।६]
'राम निकाई रावरी, है सबहीको नीक ।' [१।२६।ख]
'रीझत राम सनेह निसोते ।' [१।२८।१०]
'कैसेहु पामर पातकी, जेहि लई नाम की ओट ।
गांठी बाँध्यो राम सो, परखेउ न फेरि खर खोट ।।'
[विनय पत्रिका]

परन्तु इन पंक्तियोंको ध्यानसे देखनेपर जहाँ एक दृढ़ भरोसा हो जाता है कि—

'गये राम शरन सबको भलो ।' (वि०प०)
जनि डरपहि तोंसे अनेक खल अपनाये जानकी नाथ ।।'

और हमें यह न कहना पड़ेगा कि—

'हमारे प्रभु अवगुन चित न धरौ ।' [सूरसागर]

वरं श्रीरामजी तो अपने 'करुणामयमृदु' स्वभावसे लाचार होकर जनके अवगुणोंको मानते ही नहीं, ख्याल ही नहीं करते अतः दोष कोष—जीवसे अनेकानेक अपराध होते ही रहते हैं और भजन करने वालोंके अपराध क्षमा होते ही रहेंगे । अतएव भजन भी करते रहो और अपराध भी मनमाना करते रहो आदि कुतर्कोंको प्रश्रय मिलता है । परन्तु दूसरी ओर जब—

'साम दाम अरु दण्ड बिभेदा । नृप उर बसहिं नाथ कहबेदा ।।'
'नीति धरम के चरन सुहाये ।' [६।३७।९—१०]

'नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान यथारथ॥
जद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुरत्राता॥'
[२।२५३।५, ४।२३।१३]

आदि भी सुनते हैं तो स्वाभाविक रूपसे यह शङ्का बलवती हो उठती है कि—

'अपराधिहुँ पर कोप न काऊ।' [२।२५९।५]

होनेसे श्रीरामजी अनीतिमान राजा ठहरते हैं और जब नियम यह है कि—

'राज कि रहै नीति बिनु जाने। [७।११२।६]

तो क्या श्रीरामजी अनीतिमान राजा हैं ? शासक यदि दण्डार्ह अपराधीको दण्ड नहीं दे तो एक ओर तो अपराधियोंको खुले रूपसे अपराध करनेकी स्वतन्त्रता मिल जाती है। जिससे अराजकता फैलती है और दूसरी ओर सज्जनोंके कष्टोंकी सीमा नहीं रह जाती। इन सम्भावित शंकाओंपर विचार करते हुये समाधान रूपसे देवगुरु बृहस्पतिजीकी यही बात सामने आती है कि—

'सुनु सुरेश रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥'

अर्थात् दूसरेका अपराध करने वाला व्यक्ति श्रीरामजीसे दण्ड पाता है। हाँ यदि किसीसे खास श्रीरामजीका ही अपराध हो जाय तो उसे श्रीरामजी सदैव क्षमा करते हैं। यही बात महर्षिजी भी कहते हैं—

कथंचिदुपकारेण, कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां, शतमप्यात्मवत्तया॥
[वा० रा० अयो० १।११]

इस श्लोककी व्याख्या करते हुये रीवांके सुप्रसिद्ध कवि रामनाथ प्रधानने लिखा है कि—

कोऊ नेह राखै ताहि देह दै राखैं भऊ,
नेकहु न राखैं मृदु भाखैं बात चायन की।
कोऊ चूकि जावै ताकी चूक न चलावै,
जासों थोरो बनिआवैं जस गावैं सभा भायनकी।
जैसो जनचाहै तासों तैसो ही निबाहै नेम,
प्रेम तो अथाह है 'प्रधान' मोद दायन की।
देख्यों न सुन्यों कान ऐसौ गुणको निधान,
कहाँ लौं करौं बखान रामके सुभायन की।।'

और यह निश्चित तथ्य है कि–जो बड़भागी जीव भगवद्भजन करता है उससे कभी भी किसी प्रकारकी हानि होती ही नहीं, हो भी नहीं सकती। (पर यह बात सच्चे भजनानंदियों भगवज्जनोंकी है, मुझ जैसे वेषधारियों कुटिल स्वभाववालोंकी नहीं।) और पहले उसने चाहे कितने अपराध किये हों; परन्तु सच्चे मनसे भगवान्‌की शरण लेनेसे वह समस्त अपराधोंसे शुद्ध हो जाता है। दण्डार्ह रहता ही नहीं–

(२।२६८।२-३, ५।४४।१-२, ७।१२४।८)

'क्रूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निशील निरीश निशंकी।'
तेउ सुनि सरन सामुहे आये। सकृत प्रनाम किये अपनाये।।'
'कोटि विप्र बध लागइ जाहू। आये शरन तजौं नहिं ताहू।।'
'शरन गये प्रभु ताहु न त्यागा। विश्वद्रोहकृत अघ जेहि लागा।।'
'शरन गये मोसे अघरासी। होंहि शुद्ध नमामि अबिनाशी।।'
कैसेहु पामर पातकी, जेहि लई नाम की ओट।
गाँठी बाँध्यो राम सो, परखेउ न फेरि खर खोट।।' (बि० प०)

अपराधीको कठिन दण्ड इसलिये दिया जाता है कि जिससे वह पुनः अपराध करे ही नहीं अथवा अपराध करने लायक रह ही न जाय, जिससे दूसरे भी भयभीत होकर अपराधसे पराङ्मुख हो जाया करें।

इसीलिये तो तीक्ष्ण दण्डको नराधिप कहा गया है। बड़े अपराधीपर अर्थदण्ड (जुर्माना) करना दण्ड नहीं है। वह तो शासककी अति लोभ प्रवणता है और सच्चे शरणागत भगवद् भजनीकमें तो अपराध प्रवृत्तिका संस्कार मात्र भी नहीं रह जाता। अतः वह भगवच्छरणापन्न होनेके पश्चात् पुनः कभी अपराध करता ही नहीं, कर पाता भी नहीं। क्योंकि अपराधकी ओर उसकी मानसिक प्रवृत्ति ही नहीं होती है।

हमें यह न भूलना चाहिए कि जान-बूझकर किया गया अपकार अपराध है और न चाहते हुए अनजानेमें हो जाने वाला अपकार चूक है-

'क्षमहुँ चूक अनजानत केरी।' (१।२८२।४)

यद्यपि लोकदृष्टिमें वह भी दण्डार्ह अपराध ही है। परन्तु उसमें क्षमाको अवकाश रहता है।

भगवद्भजनीकका किसीसे वैयक्तिक सम्बन्ध रह ही नहीं जाता, उसका समस्त सम्बन्ध तो एकमात्र अपने प्रियतम प्रभुसे ही रह जाता है और समस्त जगत्-

'खं वायुमग्निं शलिलं महींश्च ज्योतींषि सत्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं, यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्य ॥'
(श्रीमद्भा० ११।२।४१)

के अनुसार भगवच्छरीर होनेसे भजनीकको-

'साँवर रूप बसौ उरमें सिगरो जग साँवर-साँवर सूझे।'
'निज प्रभुमय देखहिं जगत, कासन करहिं बिरोध ॥'
(७।११२)

अतः ऐसी दशामें उससे कुछ चूक भी होगी कोई अपराध भी होगा तो अपने प्रभुका ही। और—

'रहति न प्रभु चित चूक किये की।' (१।२९।५)

'अपराधिहुँ पर कोप न काऊ।' (२।२५६।५)
'निज अपराध रिसाहिं न काऊ।' (२।२१७।४)
इसीलिये तो त्रिभुवन गुरु भगवान् शङ्कर डंका पीट-पीटकर कहते हैं–(५।३४।३)
'उमा राम स्वभाव जेहि जाना। ताहि भजनतजि भाव न आना॥
अब एक दूसरी शंका लोग करते हैं कि जहाँ–
'रहित न प्रभु चित चूक किये की।' (१।२९।५)

वहीं लिखा है कि बालि, सुग्रीव और विभीषणका एक श्रेणीका अपराध कहकर बालिका वध सुग्रीव एवं विभीषणको सर्वथा निर्दण्ड्य कहकर क्या पक्षपात नहीं किया गया ? यहाँ गड्डलिका प्रवाहिक (भेड़ी धसान) एक दूसरेकी नकल मात्र करने वाले टीकाकारों अथ च कथक्कड़ियोंसे मेरी समझ भिन्न पड़ जाती है। वह इसलिये कि जब वहाँ आये हुए अघ 'कुचालि' और करतूति शब्दपर ध्यान देता हूँ तब किसी भी कोषमें 'अघ' 'कुचालि' और 'करतूति' इन तीनों शब्दोंको अथवा इन तीनमें से किसी भी दो शब्दको पर्यायवाची नहीं पाया जाता है। यद्यपि मानसमें ही 'अघ' शब्द कई अर्थोंमें प्रयुक्त हुआ है। परन्तु 'कुचालि' या 'करतूति' अर्थमें कहीं नहीं आया है। 'अघ' शब्दका अर्थ पाप तो सिद्ध ही है, परन्तु रामचरितमानसकी भाषामें दुःख–पापके अतिरिक्त और भी क्या–क्या 'अघ' कहाता है–इसे भी कुछ–कुछ विचार कर लें तो अर्थ समझनेमें सहायता अवश्य मिल सकती है– (१।२९।१)
'अति बड़ि मोर ढिठाई खोरी। सुनि अघ नरकहु नाक सिकोरी॥

यहाँ ढिठाईपूर्वक ब्रह्म श्रीरामजीका उपहास करना ही 'अघ' कहा गया है। इसी प्रकार बालिके अघकी बात है। इसके बाद सतीके अघकी बात आती है–
'निज अघ समुझि न कछु कहि जाई।' (१।५८।४)

प्रचलित भाषामें जिसे अघ कहा जाता है ऐसा कोई 'पाप' सतीमें नहीं था। तभी तो धर्मशास्त्र प्रणेता महर्षि याज्ञवल्क्यजीने कहा कि बिना अघके ही सतीका त्याग हुआ–

'बिनु अघ तजी सती अस नारी।' (१।१०४।७)

देवताओंने अघका अर्थ विश्वद्रोह बतलाया है–(६।१०६।४।)

'विश्व द्रोह रत यह खल कामी। निज अघ गयउ कुमारगगामी।।'

सतीजीने सीताका वेष लिया था, इससे शिवजीने परित्याग किया है। परन्तु परीक्षार्थ (जैसे नाटकमें) कोई वेष धारण करना अपराध नहीं है। यह मोटी बात भी सभी जानते–समझते हैं और इसी परीक्षार्थ वेष परिवर्तन पर ही शिवजीने त्यागा था। जो पुण्य–पाप निर्णायक धर्मशास्त्रप्रणेता श्रीयाज्ञवल्क्यजीकी दृष्टिमें पाप नहीं है। तभी स्पष्ट कह दिया–'बिनु अघ तजी सती अस नारी।' (१।१०४।७)

परन्तु सतीजी किसको अघ मानती हैं–

जो 'निज अघ समुझि न कछु कहि जाई।'

कहती हैं ? तो इसका वर्णन स्वयं सतीजी कर रही हैं कि–(१।५६।२)

'मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना।पुनि पति बचन मृषा करि जाना'

यहाँ वेष बदलकर परीक्षा लेना अपमान करना नहीं है क्योंकि उपर्युक्त चौपाईमें पहले रघुपतिका अपमान करना कह कर पुनि तब अपमान करनेके बाद पति–शिवजीके वचनको मिथ्या मानना माना है और मिथ्या मानकर ही तो परीक्षा ली थी। यह पुनि शब्दसे स्पष्ट है कि जब सतीजीके हृदयमें 'भयउ मोह' तब 'शिव कहा न कीन्हा।' और तभी 'भ्रमवश वेष सीय कर लीन्हा।' शिवजीने जब सतीजीसे बहुत तरहसे समझाकर–बुझाकर कहा–(१।५१।६–८)

'सुनहु सती तुव नारि सुभाऊ। संशय अस न धरिय उर काऊ।।'

'जासु कथा कुम्भज ऋषि गाई। भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई ॥'
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा ॥'
'मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं ॥
सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निज तंत्र नित रघुकुलमनी ॥
लाग न उर उपदेश, जदपि कहेउ शिव बार बहु।'

इस सुनहिंसे रघुकुलमनि तकके पति वचनको मृषा माना, तभी 'लाग न उर उपदेश' कहा गया है। तो इस उपदेशसे पहिले रघुपतिका अपमान करना हुआ। अर्थात् जो ब्रह्म के ब्रह्मत्व 'सर्व सामर्थ्य' पर आक्षेप किया 'सो कि देह धरि होइ नर' वह नर देह नहीं धर सकता, मनुष्य नहीं बन सकता। दूसरे ब्रह्मके अंशांशावतार विष्णुसे श्रीराम रघुपतिको निम्न कोटिका समझा—[१।५१।१-२]

'विष्णु जो सुर हित नर तनुधारी। सोउ सर्वथा यथा त्रिपुरारी ॥
खोजइ सो कि अज्ञ इव नारी। ज्ञानधाम श्रीपति असुरारी॥'

अतः केनोपनिषद्के अनुसार ज्ञानाधिष्ठात्री देवी होते हुये भी जान-बूझकर परब्रह्मके ब्रह्मत्व पर आक्षेप किया। उन्हें अज्ञ तक कह डाला, इसीको वे स्वयं अपने द्वारा अपमान करना मान रही हैं।

'मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना ॥' [१।५८।२]
'निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। (१।५८।४)

इसी तरह बालिने—
'समदरशी रघुनाथ।' [४।७]

जानकर भी ब्रह्मका अपमान किया। ब्रह्मके आश्रितको मार डालना चाहा। यदि केवल अपमान ही करता तो 'निज अपराध रिसाहि न काऊ।' परन्तु आश्रितको मारना

चाहता था । इसीसे–

'रामरोष पावक सो जरई ।' (२।२१७।५)

'जेहि अघ' यही उसका अघ है । पीठ पीछेकी हुई बुराईका नाम कुचालि है । सुग्रीव सामने तो कहते थे कि–

'सब परिहरि करिहौं सेवकाई ।' (४।८।१६)

और पीछा होते ही–

'सुग्रीवहु सुधि मोर बिसारी ।' (४।१८।४)

परन्तु––'निज अपराध रिसाहिं न काऊ । (२।२१७।४)

अतः—'सपनेहु सो न राम हिय हेरी ।' (१।२९।७)

करतूति सामने होती है । विभीषणजी जानते थे कि श्रीरामचन्द्रजी–

'भुवनेश्वर कालहुँ कर काला ।' (५।३९।१)

हैं तो भी श्रीरामजीके सामने ही शत्रुकी प्रसंशा माधुर्यमें भूल कर कर बैठे—

'केहि विधि जितव बीर बलवाना ।' (६।७९।३)

उसी प्रतिद्वंदीकी प्रसंशा करना अपमान करना है । देखिये महाभारत कर्णपर्वमें, कर्ण और शल्यका सम्वाद । परन्तु–

'निज अपराध रिसाहु न काऊ ।' [२।२१७।४]

अतः अपने स्वभावानुसार स्वप्नमें भी श्रीरामजीने कहा–'सपनेहु सो न राम हिय हेरी ।' [१।२९।७]

सुग्रीव और विभीषण दोनोंकी कुचालि–करतूति दोनोंके साथ सोइ शब्द लगानेका तात्पर्य केवल ब्रह्मत्वका सम्बन्ध लेकर है, कार्यकी प्रक्रियासे नहीं । अब तो अपातत: प्रसिद्ध है कि जैसे बालिने सुग्रीवकी पत्नीको बलपूर्वक पत्नीवत् रख लिया था । वैसे ही सुग्रीवने बालिकी पत्नीको और विभीषणने रावणकी पत्नीको स्वपत्नीवत् रख लिया था । यही अघ 'कुचालि' और 'करतूति' है । इस पर थोड़ा विचार करके

तब 'व्याध' इव पर विचार किया जायेगा।

आजके जमानेमें तो किसीको छोटी जाति-हीन वर्ण कहना कानूनन अपराध है, परन्तु हमारे पूर्वज जिसे छोटी जाति त्रिवर्णसे हीन मानते आये हैं, उनमें भी वर्ण व्यवस्था चलने [अनादि] कालसे आजतक भारतके प्रायः सभी भागोंमें यह देखा जाता है कि छोटे भाईके जीते हुए या मर जानेपर सब कालमें उसकी पत्नीकी छाया तक छूनेका बड़ा भाई परहेज करता है। परन्तु बड़े भाईके मर जाने पर उसकी पत्नीको जातीय पंचोंकी आज्ञासे छोटा भाई अपनी पत्नी बना लेता है उस कृत्यको उस समाजमें निन्द्य नहीं माना जाता। अपितु विहित ही माना जाता है। उनका समाज उसे विहित कर्म-मानकर सहर्ष आज्ञा देता है।

वर्ण व्यवस्थाके नियमानुसार बालि द्विजातीयमें था। ऐसा तो कोई मान ही नहीं सकता। अतः बालिका अनुजवध रत होना तो उन [अनार्यों एवं वनार्यों] की [सामाजिक] दृष्टिमे भी घोर पाप था। यद्यपि सुग्रीवने वालिकी पत्नीको अपनी पत्नी नहीं वनाया था तो भी 'तुष्यतु दुर्जनः' इस दुर्जनतोष न्यायसे यदि वैसा मान भी लिया जाय तो उस समाजकी दृष्टिसे दोष नहीं था क्योंकि वे लोग ब्राह्मण-क्षत्रिय वैश्य इन द्विजातियोंमें नहीं थे और द्विजेतरोंमें तव भी देव-रात्सुतोत्पत्ति कर्म विहित था आज भी है। वैदिक कालमें द्विजेतरोंकी स्त्रियाँ दस-दस वार पतिकर सकती थीं परन्तु द्विज स्त्रीका एक ही पति होता था। यथा—

'उत यत पतयो दश स्त्रियः पूर्वे अब्राह्मणाः।
ब्रह्मा चेद्धमग्रहीत् स एव पतिरेकधाः॥

[अथर्व ५।१७।८]

यहाँ ब्रह्मा त्रिवर्णका और अब्राह्मणः चतर्थवर्णका द्योतक

है। जैसा कि इसी सूक्तके तीसरे मन्त्रमें 'ब्रह्म जायेति……
क्षत्रियस्य' में है। आगेके मन्त्रमें ब्राह्मण कन्याका पति ब्राह्मण
ही हो सकता है, क्षत्रिय, वैश्य नहीं।

'ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो न वैश्यः।' (अथर्व ५।१७।९

तात्पर्य यह कि ऊँचे कुलकी कन्याका पति उससे निम्न
कुलका नहीं हो सकता। अस्तु—

यह बात विभीषणके लिये भी है। पुलस्त्य कुलके होते
हुये भी द्विजत्वहीन थे। एक उदाहरण देखिये—

दुर्योधन और कृपाचार्यके सामने भरद्वाज- द्रोण पुत्र
अश्वत्थामा और कर्णमें गरमागरम बातचीत चल रही थी।
तबतक अश्वत्थामाने कर्णके ऊपर प्रहार करनेके लिये चरण
उठाया। तब तो—

कर्णः (सक्रोध खड्गमाकृष्य) अये दुरात्मन् ब्रह्मबन्धो
आत्मश्लाघिन्—जात्या काममवध्योऽसि चरणं त्विदमुद्धतम्
अनेन लूनं खड्गेन पतितं द्रक्ष्यसि क्षितौ।

अश्वत्थामा—'अरे मूढ़! किं नाम जात्या काममवध्योऽहम्,
इय सा जातिः, इति यज्ञोपवीतं छिनत्ति॥'

[वेणी संहारे तृतीयाङ्के]

जब जनेऊ त्यागने वालेको मारनेसे ब्रह्महत्या नहीं
लगेगी। जनेऊ त्यागना मात्र द्विजत्वसे हीन होना है। तो
लंका निवासी मात्र जनेऊ ही नहीं अपितु समस्त द्विजातीय
कर्म कलापसे हीन थे। अतः यदि विभीषणने भी अग्रज वधू
को पत्नी बनाया हो तो दोषी नहीं। यद्यपि ऐसा हुआ नहीं
था। जब बहुत प्रचलित ग्रन्थ श्रीरामचरितमानसमें एक बहुत
बड़ा अंश क्षेपक पाया जाता है तब दोहावली और कविता-
वली आदिमें थोड़ा बहुत क्षेपक मिलना किंचित् भी आश्चर्य
जनक नहीं है। यदि ऐसा मान लिया जाय तो इसमें सुग्रीव

और विभीषणने श्रीरामजीका कौनसा अपराध किया जिसे श्रीरामजीने क्षमा कर दिया और-

'रहत न प्रभु चित चूक किये की। [१।२६।५]

'निज अपराध रिसाहि न काऊ।' [२।२१७।४]

उनको अपना लिया। सामाजिक अपराधको क्षमा करनेका अधिकार समाजको है शासकको नहीं ! अतः यदि सुग्रीव और विभीषणने अग्रज वधूको ग्रहण किया भी हो तो दोष नहीं अपितु सामाजिक रीति होनेसे ग्राह्य ही है। जो लोग तारा का पुनः पति ग्रहण अर्थात् सुग्रीवकी पत्नी बन जाना कहते है वे न तो श्रीरामचरित मानसपर ही विचार करते हैं और न श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणके प्रसङ्गोंपर ही, केवल गड्डलिका प्रवाहानुसरण करते हैं। मानसमें विचार करनेकी बात है-

'तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ज्ञान हरि लीन्हीं माया।।'
'छितिजल पावकगगन समीरा। पंच रचित यह अधम शरीरा।'
'प्रगट सो तन तुव आगे सोवा। जीव मुक्त केहि लगि तुम रोवा।।'
उपजा ज्ञान चरन तब लागी। लीन्हेसि परमभगति बर माँगी।।'

[४।११।४-६]

जिसके ऊपरसे स्वयं भगवान् मायाका हरण कर लें। माया रहित बना दें। स्वयं ज्ञान प्रदान करें, जो परम भक्तिका वरदान स्वयं प्रभुसे ही प्राप्त कर लें, वह पुत्रवती होकर भी पुनः काम लिप्त हो जाय तो फिर भला मायाहरण, ज्ञान एवं परमभक्ति प्रदानका क्या मूल्य रह गया ?

वाल्मीकीय रामायणमें विचारनेकी बात है कि जब मायाहरण ज्ञान एवं भक्ति प्राप्तिके पूर्व ही तारा स्वयं कहती है कि-'नहि मम हरिराजसंश्रतात्, क्षमतरमस्ति परत्र चेह वा।
अभिमुखहतवीरसेवितं, शयनमिदं मम सेवितुं क्षमम्।।'

(वा० रा० कि० २१।१६)

अर्थात् मेरा सुग्रीवके आश्रयमें रहना न तो इस लोकमें ही उत्तम समझा जा सकता है न परलोकमें ही (क्योंकि मैं वीर पुत्रिणी) हूँ । अतः 'अभिमुखहत' सामने युद्धमें मरे हुये वालिकी मृत शय्यापर सो जाना ही मुझे उचित है ।

यदि सुग्रीवकी काम क्रीड़ामें तारा भी रहती तो काम जयी लक्ष्मणका क्रोध शांत करनेके लिये सुग्रीव कभी भी काम विजयी हनुमानजीके साथ ताराको न भेजते । (४।२०।३)
'तुम हनुमन्त सङ्ग लै तारा । करि विनती समुझाउ कुमारा ।।'

तारा बनार्य वालिकी प्रिया पत्नी रानी थी, सदैव राजभोग भोगती रही । आज जैसे महान् दोष होते हुए भी सभ्य समाजमें अधिकांश लोगोंने धूम्रपान–तमाल भक्षणको सामाजिक प्रथा मान लिया है । वैसे ही उनमें मद्य पीना भी अनुचित नहीं माना जाता था । इसीसे तारा भी मद्य पीती रही ! तारा मद्य पी चुकी थी । उसके नशेका वेग सर्वथा उतरा नहीं था, उसी समय उसे लक्ष्मणजीके सामने जाना पड़ा । इसीसे महर्षिने लिखा—[वा० रा० ४.३३।३८]

'सा प्रस्खलन्ती मदविह्वलाक्षी, प्रलम्बकांचीगुणहेमसूत्रा ।
सुलक्षणा लक्ष्मणसंनिधानं, जगाम तारा नमिताङ्गयष्टिः ।।'

इसी श्लोकको लेकर कई लोगोंने अनेक बावेला खड़ा कर दिया है । अस्तु लक्ष्मणने स्पष्ट देखा कि सुग्रीव केवल अपनी पत्नी रुमामें आसक्त था–[वा०रा० ३३।६६

'रुमां तु वीरः परिरभ्य गाढं, वरासनस्थो वरहेमवर्णः ।
ददर्श सौमित्रिमदीनसत्वं, विशालनेत्रः सु विशालनेत्रम् ।।

रह गयी 'व्याध इव' की बात तो वालिने कहा था कि–
'धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं । मारेहु मोहिं व्याध की नाईं ।।'
[४।९।५]

और सबसे श्रेष्ठ धर्म है दया–

'धर्म कि दया सरिस हरियाना ।'

बालिके कहनेका तात्पर्य यह कि आपने दयाके लिये तो अवतार लिया और मारा मुझे निर्दयतापूर्वक/। गुरुजन जब किसीको मारते हैं तब ताड़ना देकर शिक्षाके लिये सुधार के लिये । परन्तु शत्रु और व्याध निर्दयतापूर्वक मार डालनेके लिये ही मारते हैं । निर्दयताकी मारका अनुभव महाप्राण बालिने भी किया है--

'परा बिकल महि शर के लागे ।।' ४।६।१

बालिने जब श्रीरामजीसे ही उनके अवतार होनेकी बात कही तब श्रीरामजीने उत्तर दिया कि-मेरा तुम्हें मारना न्याय है । क्योंकि तुम अधम और अभिमानी हो-।।४।६।१०

'मम भुजबल आश्रित तेहि जानी।मारा चहसि अधम अभिमानी।।

भगवदवतार तो अधम और अभिमानीके मारनेके लिये होता ही है—।।१।१२१।६-७

'जब जब होइ धरम की हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।।
तब तब प्रभुधरिबिबिधशरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।।'

पीछे बालिने मान लिया कि मैं यथार्थ नहीं अपितु वाक् चातुरीपूर्वक बात कर रहा था-

'सुनहु राम स्वामी सन, चल न चातुरी मोर ।।'४।६

श्रीरामजीने छिपकर नहीं मारा था । बिना सामने हुए छातीमें निशाना लगाया ही नहीं जा सकता और-

'मारा बालिहिं राम तब, हृदय माँझ शर तानि ।।'४।८

वाल्मीकि रामायणके अनुसार बालिने छिपकर मारनेका मिथ्या दोष श्रीरामपर आरोपित किया है । परन्तु सोचने की बात है कि जो व्यक्ति 'अनुज-वधू हरण' ऐसा 'अगम्यागमनसा घोर पापकर सकता है । उसे झूंठ बोलनेमें कब संकोच हो सकता है ? बालिने सरासर झूँठा आरोप लगाया था ।

वाल्मीकीय रामायणमें आया है

'ह्रीयमानमथापश्यत् सुग्रीवं वानरेश्वरम् ।
प्रेक्षमाणं दिशश्चैव राघवः स मुहुर्मुहुः ॥३१
ततो रामो महातेजा आर्त्तं दृष्ट्वा हरीश्वरम् ।
स शरं विक्षते वीरो वालिनो वधकाङ्क्षया ॥३२
ततो धनुषि संधाय शरमाशीविषोपमम् ।
पूरयामास तच्चापं, कालचक्रमिवान्तकः ॥३३
तस्य ज्यातलघोषेण, त्रस्ताः पत्ररथेश्वराः ।
प्रदुद्रुवुः मृगाश्चैव युगान्त इव मोहिताः ॥३४
मुक्तस्तु वज्र निर्घोषः प्रदीप्ताशनिसंनिभः ।
राघवेण महाबाणो वालि वक्षसि पातितः ।।'३५

(वा० रा० कि० १६।३१।३५)

यहाँ 'ह्रीयमानं' 'आर्त्तंदृष्ट्वा' आदि बता रहा है कि श्रीरामजी युद्धस्थलके पास ही थे, जिन्हें सुग्रीव बार-बार देख लेते थे । 'प्रेक्षमाणं मुहुर्मुहुः ।' द्वन्द्वयुद्ध करते हुए सुग्रीवको रामजी दिखायी पड़ते हैं, तब बालिसे कैसे छिप सकते हैं? श्रीरामजीने बाण छोड़नेके पूर्व ही प्रत्यञ्चाका भयङ्कर टंकार किया था । छिपकर मारने वाला बहेलिया क्या घोर शब्द करके वध्यको भगानेकी चेष्टा करता है ?

यदि श्रीरामजी बालिको छिपकर मारते तो सुग्रीवको यह चेतावली नहीं दे सकते थे कि—

'न स संकुचितः पन्था येन वाली हतोगतः ।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः ॥'

वा० रा० कि० ३४।१८

जिस प्रकार बालि मारा गया वह मार्ग बन्द नहीं हो गया । इसमें ललकारकर मारनेका ढङ्ग स्पष्ट ही है । जिस तरह कि अर्जुनने तीन बाण निकालकर अलग रखकर प्रतिज्ञा

की थी कि इन्हीं तीन बाणोंसे ही सुधन्वाको मारूँगा, पश्चात् अन्य-अन्य अनेक बाणोंसे युद्ध किया पर सुधन्वाको मारनेके लिए उन्हीं तीन बाणोंका ही प्रयोग किया था। उसी तरह समझना चाहिये कि श्रीरामजीने भी एक बाण अलग कर लिया था कि इसी बाणसे बालिको मार डालूँगा। पर युद्ध अनेकों बाणोंसे किया था। जैसा कि ताराने कहा था कि श्रीरामजी और बालिसे युद्ध हुआ था। उसमें बालिने अनेक पत्थरोंका और श्रीरामजीने बाणोंका प्रहार किया था। यथा-

'रामेण प्रहितैर्दूरान्मार्गणैर्दूरपातिभिः।'

वा० रा० कि० १९।९

क्षिप्तान्वृक्षान् समाविध्य विपुलांश्च तथाशिला।
वाली वज्रसमैर्बाणै रामेण विनिपातितः॥'

वा० कि० १९।१२

'दृष्ट्वा संग्रामयज्ञेन रामप्रहरणाम्भसा।
तस्मिन्नवभृथे स्नातः कथं पत्न्या मया विना॥'

वा० कि० २३।२७

श्रीहनुमानजीने अशोक बाटिकामें सीताजीको बताया था- 'ततो निहत्य तरसा रामो वालिनमाहवे।'

वा० सु० ३५।५१

इस प्रकार वाल्मीकीय रामायणमें बड़े विस्तारसे यत्र-तत्र करके बहुत कुछ लिखा गया है। वाल्मीकीय रामायणके अधिक प्रमाण देखनेके लिए पं०श्रीवज्राङ्गदासजीका वालि-वधदर्पण ग्रन्थ देखना चाहिए। अनेक श्रीरामचरित वेत्ताओंनें भी लिखा है कि वालिके साथ श्रीरामजीका युद्ध हुआ था। इस द्वन्द्व युद्धमें श्रीरामजीने बालिको मारा था। साहित्यदर्पणकारने 'उदात्तराघव' का उद्धरण दिया है-

'सुग्रीववीरचरिते तु वाली, रामवधार्थमागतो रामेण हतः ।।'
[सा० द० परि० ६]

उसी छठें परिच्छेदमें ही उन्होंने यह भी कहींका उद्धरण दिया है कि बालिने जो श्रीरामजी पर छिपकर मारनेका मिथ्या दोष लगाया था । उसके लिये क्षमा मांगते हुये कहा है— 'प्राणप्रयाणदुःखार्त उक्तवानस्म्यनक्षरम् ।
तत् क्षमस्व विभो किं च सुग्रीवस्ते समर्पितः ।।'

महानाटकमें बालिका ललकारकर श्रीरामजीसे युद्ध करना वर्णित है । देखिये—

'गृहाण वाणं रघुराजपुत्र ! सुत्रामसूनं समरेऽवतीर्णम् ।
जानीहि मां दुन्दुभि-घात-वज्रं नेष्यामि वां कालगृहातिथित्वम्।।
इत्युभौ युद्धमवतरतः । [म०ना० ४।७१]

मायावीके युद्धमें जब सुग्रीवने वालिको अनजानतेमें गुफामें बन्द कर दिया था और सुग्रीवको मन्त्रियोंने वलात् राजा बनाया था [बालिको मारा गया समझकर] उस समय अपुत्रा होनेसे [बालिकी विधवा पत्नीको] सुग्रीवने पत्नी बनाया था । मन्त्रि मन्डलकी आज्ञ से बनार्य जातियोंके नियमसे । इसीको लक्ष्य करके अङ्गदने कहा था कि जेठे भाई के जीवित रहते ही उसकी प्रिया महिषीको जिसने अपनी भार्या बना लिया था—

भ्रातृज्येष्ठस्य यो भार्या जीवितो महिषीं प्रियाम् ।
धर्मेण मातरं यस्तु, स्वीकरोति जुगुप्सितः ।।'
[वा० रा० कि० ५५।३]

इसी बातको लेकर अभिषेक नाटकमें भासने लिखा है कि बालिने श्रीरामजीसे प्रश्न किया था कि भातृ पत्नीको पत्नी बनानेवाले दोनों हैं । तब रामजीने कहाकि जेठे भाईको छोटे भाईकी पत्नीको ग्रहण नहीं करना चाहिए । तुमने छोटे भाईकी पत्नीको ग्रहण कर लिया—

बालि—'सुग्रीवेणाभिमृष्टाभूद् धर्मपत्नी गुरोर्मम ।
तस्य दाराभिमर्शेन कथं दंडचोऽस्मि राघव ।।'[१।२१]
भ्रातृ दाराभिमनेन तुल्य दोषयोरहमेव दण्डितो न सुग्रीवः ? ।।
राम:- 'दण्डिस्त्वं हि दण्डयावाद, अदण्डयोनैव दण्ड्यते ।
नत्वेव हि कदाचिज्ज्येष्ठस्य,यवीयसो दाराभिमर्शनम् ।।'
हन्त अनुत्तरावयम् ।

ऐसा ही हरिवंशमें भी है । देखिये—
'सुग्रीवस्य कृते येन वानरेन्द्रो महाबलः ।
वाली विनिहितो युद्धे, सुग्रीवश्चाभिषेचितः ।।' (हरिवंश१।४१।३३)

महाकवि भवभूतिने 'महावीरचरितम्' के पाँचवें अङ्क-में युद्धके पूर्व बालि और श्रीरामजीका बहुत वाद-विवाद लिखा है कि बालिने श्रीरामजीको लड़नेके लिए ललकारते हुए कहा था कि—

'आनन्दाय च विस्मयाय च मया दृष्टोऽसि दुःखाय वा ।
वैतृष्ण्यं तु ममापि सम्प्रति कुतस्त्वद्दर्शने चक्षुषः ।।'
त्वत्साङ्गत्यसुखस्य नास्मि विषयस्तत् किं वृथाव्याहतै-
रस्मिन् विश्रुत जामदग्न्य-दमने पाणौ धनुर्जृम्भताम् ।।'
(५।४७)

अनर्घ राघवके पंचम अङ्कमें श्रीराम लक्ष्मणके साथ बालिका बहुत लम्बा-चौड़ा वार्तालाप होनेके बाद लिखा है कि श्रीरामने बालिसे कहा कि 'मैं धनुष लेता हूँ' तुम भी अपने शस्त्रास्त्र सम्भालो, तो बालिने कहा कि हमारा हथियार तो नख-थप्पड़-पेड़, घूंसा एवं पत्थर ही है—

'नन्वेतदधि मौर्वीकं, युद्धसर्वस्वदक्षिणाम् ।
सज्जमस्त्येव मे रक्षोलक्ष्मीमूलहरं धनुः ।।'

बालि—(विहस्य)—
'साधु भो ! महाक्षत्रिय! यथा हि धर्ममभिदधासि किं ?

पुनः-'नयो हि सांग्रामिक एष दोष्मतां,
यथात्मजातिप्रतिरूपमायुधम् ।
अयस्कुशीभिः कपयो नशस्त्रिण-
स्तलं च मुष्ठिश्च नखाश्च सन्ति नः ॥'

निष्कर्ष यह है कि बालिने जानबूझकर अघ किया था श्रीरामजीने बालिको छिपकर नहीं मारा था । सुग्रीवने तारा को (बालि पत्नी) को अपनी पत्नी नहीं बनाया था । अस्तु 'प्रकृतमनु सरामः' श्रीरामजीका स्वभाव है, जो कोई किसी तरहका भी उनका अपना अपराध चाहे अनचाहेमें कर देता है तो--(१।२९।५, ५।३४।३)

'रहति न प्रभु चितचूक कियेकी । करति सुरति सयवार हियेकी।'
अतः-'उमा रामस्वभावजेहिजाना।ताहिभजनतजिभाव न आना।।
'वेद विरुद्ध मही मुनि साधु, ससोक कियो सुरलोक उजारचौ ।
और कहा कहौं तीय हरी, तबहूँ करुनाकर कोप न धारचौ।।
सेवक छोह ते छाँड़ी क्षमा,तुलसीलख्यौ राम!सुभाव तिहारचौ
तौलौं न दाप दल्यौं दशकंधर, जौ लौं विभीषण लात नमारचौ।।'
(कवितावली)

★

★ श्रीराम-कर-कंज ★

'तुच्छ लगैं सब अमृत-बीचि सिया करुना की कटाक्ष जौ हेरैं ।
अति दीन मलीन सुसाधनहीन 'कुमार' भयो पद पङ्कज नेरैं ।।
करुनामृत मो बुधि-बापी भरैं तो कढ़ैं नव काव्य-सुकंज घनेरैं ।
सीय पदार्पण कै हरि जो करकंज कृपा करि शीश मों फेरैं ।।'

श्रीवाल्मीकिजीने श्रीरामजीसे कहा था-(२।१२६।५)
'चिदानन्दमय देह तुम्हारी । रहित विकार जान अधिकारी ।।'
श्रीरामभद्रजीका सर्वाङ्ग सच्चिदानन्दात्मक है । उन

अङ्गावयवोंमें देखनेमें तारतम्य होते हुए भी माहात्म्य प्रभाव में कोई भी तारतम्य नहीं है। रहस्य-ग्रन्थोंमें प्रायः सभी अंगावयवोंका माहात्म्य प्रचुररूपेण पाया जाता है। पर आज यहाँ गोस्वामीपाद श्रीतुलसीदासजी महाराज द्वारा कथित भगवान् श्रीरामभद्रजीके केवल श्रीकराम्बुजोंकी छाया मात्रके माहात्म्यका किंचित् उदाहरण उन्हीं गोस्वामीजीके शब्दोंमें उपस्थित किया जाता है। साक्षात् श्रीकरकमलोंका माहात्म्य तो क्या माहात्म्याभास तकका भी यथार्थ वर्णन कोई कर नहीं सकता। हाँ गोस्वामीजीने अर्थालङ्कार-वर्णन-परिपाटीसे कविकर्म निर्वाह के लिये कई जगह श्रीरामकराम्बुजोंके वर्णनमें अम्बुजोंको उपमानमें रखकर उपमेय मात्रका वर्णन सांगरूपकसे किया है।

जैसे—१-'कनक कुधर केदार बीज सुन्दर सुर मुनिवर।
सींचि कामधुक धेनु सुधामय पय विसुद्धतर॥
तीरथ पति अंकुर स्वरूप यक्षेश रक्ष तेहि।
मरकतमय शाखा सुपुत्र मंजरि सुलक्षि जेहि॥'
'कैवल्य सकल फल कल्पतरु, शुभ स्वभाव सब सुख बरिस।
कह 'तुलसिदास' रघुबंशमनि, तौ कि होहि तुव कर सरिस॥'
(कवितावली उत्तर० ११५)

२-'सुमिरत श्रीरघुबीर की बाहैं।
कल्पलताहू की कल्पलता वर, कामदुहाहु की कामदुहा हैं॥'
(गीतावली उत्तर० १३)

३-'रामचन्द्र करकंज कामतरु, वामदेव हितकारी॥'
... ...
'अबिचल अमल अनामय अविरल ललित रहित छल छाया।
समन सकल संताप-पाप-रुज मोह मान मद माया॥'
(गीतावली उत्तर० १४)

४–'कबहुँ सो कर–सरोज रघुनायक धरिहौं नाथ शीश मेरे ।
जेहि कर अभय किए जन आरत बारक बिबस नाम टेरे ।।१
जेहि कर-कमल कठोर संभुधनु, भंजि जनक संशय मेटयो ।
जेहिकर-कमल उठाइ बंधु ज्यों, परम प्रीति केवट भेटयो ।।२
जेहिकर-कमल कृपालुगीध कहँ, उदक देइ निजलोक दियो ।
जेहिकर बालिबिदारिदासहित, कपि-कुल-पति सुग्रीवकियो।।३
आयो शरन सभीत विभीषन, जेहिकर-कमलतिलककीन्हों।
जेहि कर गहि शर-चाप असुर, हति अभयदान देवन दीन्हों।।४
शीतल सुखद छाँह जेहिकरकी, मेटति पाप–ताप–माया ।
निशि-वासरतेहिकर सरोजकी, चाहत तुलसिदास छाया ।।५
[विनय पत्रिका १३८]

उपर्युक्त चारों स्थलोंपर कहा गया कर–कन्जका माहात्म्य प्रायः एक सा ही है । केवल शब्दोंका उलट–फेर मात्र है । विनय पत्रिका वाले पदमें कर–कंजकी सुछाया पाकर माहात्म्य लाभ करने वालोंमें कुछ महाभागोंका नाम भी गिनाए हैं, जैसे–केवट, गीध, सुग्रीब, विभीषणादि ।

इस पदमें जिनपर सीधे कृपा हुई उनके साथ तो श्रीराम करके विशेषणमें कमल या कमलके पर्यायवाची शब्द दिए हैं और जिसे–जिसे दण्ड देकर कृपाकी गयी है उसके साथ श्रीरामकरका विशेषण रहित प्रयोग है । यह बात भावुकों द्वारा चिन्त्य हैं ।

अब जिन महाभागों पर श्रीरामभद्रजीने अपना कर–कमल रखा अर्थात् जिन्होंने श्रीराम–कर–कंजकी छाया प्राप्त की और उनका कल्याण उस छाया मात्रसे हुआ अर्थात् उनके पाप, ताप और मायाका नाश हो गया । उनमें कुछ महाभागोंके उदाहरणमें श्रीरामचरित मानसका साक्ष्य उद्धृत किया जाता है––

१–महामानव मूलपुरुष श्रीमनुजी—

'शिर परसे प्रभु निज कर कंजा। तुरत उठाए करुना पुंजा।।'
(१।१४९।८)

पाप-ताप-माया तीनोंका नाश—

१–त्रिदेवोंका अनादर–

'बिधि हरिहर तप देखि अपारा। मनु समीप आये बहु बारा।।"
'माँगहु बर बहुभाँति लोभाये।।' [१।१४५]
पर बोले तक नहीं।

ताप–'अस्थिमात्र होइ रहे शरीरा।' [१।१४५।४]
'उर अभिलाष निरन्तर होई।' [१।१४४।३]
'जो अनाथ हित हम पर नेहा' [१।१४६।३]

माया–'बरबश राज सुतहिं नृप दीन्हा।' [१।१४३।१)
'बहु भाँति लोभाए।' परन्तु–परमधीर नहिं चलहिं चलाए।।
चाहउँ तुम्हहिं समान सुत, प्रभु सन कवन दुराव।।'१।१४९

२–काकर्षि श्रीभुशुण्डिजी–'कर सरोज प्रभु मम शिर धरेऊ।'७।

पाप-ताप और माया तीनोंका नाश

पाप–गुरुद्रोह–'गुरु कर द्रोह करउँ दिन राती।'७।१०६।७
ताप–अनन्त ब्रह्माण्डोंमें भ्रमणसे उत्पन्न अबसाद–७।८२।१
'भ्रमत मोहिं ब्रह्माण्ड निकेता।' धरनि परेउँ मुख आव न बानी।'
माया–'निज माया प्रभुता तब रोकी।'
'अब न तुमहिं माया नियराई।'

३–बनेचराधीश केवट गुहजी

'परम प्रीति विलोकि रघुराई। हरषि उठाइ लियो उर लाई।।'
'लियो हृदय लाइ कृपानिधान०।' ६।१२०।१२
'जेहि कर कमल उठाइ बन्धु ज्यों परम प्रीति केवट भेंट्यो।।'
(विनयपत्रिका)

पाप-ताप और माया तीनोंका नाश

पाप–मांसाहार–'पात भरी सहरी सकल सुत बारे बारे ।' क०
'यहि सम निपट नीच कोउ नाहीं ।' २।२४२।८
ताप–'राम कृपालु गरीब निवाजा ।।' २।१९५।२
'राम कीन्ह आपन जबहीं ते । भयउँ भुवन भूषन तबहीं ते ।।'
माया–देव धरनि धन धाम तुम्हारा ।
मैं जन नीच सहित परिवारा ।।' २।८८।६
४–गृध्राधिपति श्रीजटायुजी–
कर सरोज शिरपरसेउ, कृपासिंधु रघुबीर ।।' ३।३०

पाप-ताप और माया तीनोंका नाश

पाप–'खाइ कुजन्तु जियौं हौं ।' गीता०
'गीध अधम खग आमिष भोगी ।' ३।३३।२
ताप–रावण-युद्धजनित अवसाद, घायलपन– ३।२९।२२
'काटेसि पंख परा खग धरनी ।' ... ...बिगत भई सब पीर ।।
३।३०
माया–शरीरका मोह–'राम कहा तनु राखहु ताता । ३३।१५
जब–'राखउँ देह नाथ केहि खाँगे ।।' ३।३१७
५–महाभागवताग्रगण्य श्रीहनुमानजी– ४।२३।९–१०
'पाछे पवन तनय शिर नावा ।' 'परसा शीश सरोरुह पानी ।।'

पाप-ताप और माया तीनोंका नाश

पाप–सिंहिका (स्त्री)–वध, लङ्का नगर दाहजन्य गर्जन द्वारा भ्रूणहत्या– ५।८८।१
चलत महा धुनि गरजेउ भारी । गर्भस्रवहिं सुनि निशिचर नारी।।
ताप–सुरसा (नागिनके मुखके विषसे सम्भूतदाह और लङ्का जलाते समय अग्नि-जन्य-ताप ।
माया–'बोला बचन बिगत श्रम शूला ।।'

६—वानराधीश रामसखा श्रीसुग्रीवजी—
'कर परसा सुग्रीव शरीरा।' [४।८।६]

पाप-ताप और माया तीनोंका नाश—(४।२।१।३)

पाप—'मैं पामर पशु कपि अति कामी ।।'
'बिषय मोर हर लीन्हेउ ग्याना ।। [४।१६।३]
ताप—तन भा कुलिश गई सब पीरा ।। [४।८।६]
'बालि त्रास व्याकुल दिन राती। तन बहु ब्रन चिंता जर छाती ।।
'सो सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ।।'
माया—'नाथ कृपा मन भयउ अलोला।' [४।७।१५]
'सुख सम्पति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई ।।'
'अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटइ राम करहु जौं दाया ।।'
'तुम प्रिय मोहिं भरत जिमि भाई।' [४।२१।२]

७—महाप्राण श्रीबालिजी—[४।१०।१]
'सुनत राम अति कोमल बानी। बालि शीश परसा निज पानी ।।'

पाप-ताप और माया तीनोंका नाश

पाप—अगम्यागमन अनुजवधूरति, भक्तद्रोह, भगवदपमान, अभिमान आदि। [४।६।१, ४।१०।२, ४।१०।५]
ताप—बाणजनित व्यथा—'परा बिकल महि शरके लागे।'
माया—शरीर ममत्व—'अचल करौं तनु राखहु प्राना ।।
'बहुरि कि प्रभु अस बनहि बनावा ।।'
अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करिहि करीरही।

८—अमर लंकेश विभीषण—
आयो शरन सभीत विभीषन, जेहि कर कमल तिलक कीन्हो।'

पाप-ताप और माया तीनोंका नाश

पाप—सहज पाप प्रिय तामस देहा। [५।४५।८]
ताप—रावण क्रोध अनल······जरत विभीषण राखेउ। [५।४६]
माया—उर कछु प्रथमबासना रही। प्रभु पदप्रीति सरित सो बही।।

'जदपि सखा तोहि इच्छा नाहीं । (५।४६।६-६)

श्रीराम-कर-कञ्जोंमें जो चौंसठ चिह्न हैं, उनके माहात्म्यका संकेत यहाँ स्थानाभावसे नहीं दिया जा रहा है।

✶

(पृष्ठ संख्या ४ का शेषांश)

'जो अपराध भक्त कर करई। राम रोष पावक सो जरई ॥'

इन सब तथ्योंके अतिरिक्त श्रीराम करकंज स्पर्शकी भी महिमा कही गयी है। अतः यह पुस्तक भक्तोंके लिये अत्यन्त उपादेय है।

मैंने भी 'श्रीराम स्वभाव' पर मानससे कुछ सामगी एकत्र की है। उसे अन्तमें दे दिया हूँ। मानस पाठकोंको उससे सन्तोष होगा, यह मुझे विश्वास है। अन्तमें मैं इसका प्रकाशन करानेवाले अपने प्रिय शिष्य 'सुन्दरराघवदास (सुदर्शनदुबे) चन्दनपुरा, रोहतास (बिहार) को आशीर्वाद देता हूँ कि उनकी मति सदैव भगवद्भागवत सेवामें लगी रहे। वास्तवमें उसीका धन कृतार्थ है जो उसे श्रीभगवान्‌की सेवामें खर्च करता है--"सो धन धन्य प्रथम गति जाकी।" सुन्दरराघव दासने इसके प्रकाशन कार्यमें भी अत्यधिक सहयोग किया है। बार-बार प्रेससे प्रूफ लाना-ले जाना कागजादि पहुँचाना तथा प्रूफ देखनेका भी कार्य किया है। श्रीभगवान्‌की कृपासे वे चिरकाल तक स्वस्थ एवं सुखी रहें यही प्रभुसे मेरी मङ्गल कामना है।

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया ॥'

भगवद्भागवदानुचरः

पं० सच्चिदानन्ददासः

दि० १७/६/१९९२

भक्तवत्सल भगवान् श्रीरामका सरल स्वभाव

ले.—मानस मर्मज्ञ-आचार्यप्रवर पं. श्रीसच्चिदानन्ददासजी रामायणी, महान्त—वरविश्रामबाग, श्रीरामग्रंथागार,
मणिपर्वत, अयोध्या

पंडित रामकुमार पद, रज निज शिर परलाय।
रामानन्दाचार्य वर, चरण कमल शिरनाय ॥१॥
सम्प्रदाय आचार्य जी. श्रीमद् रामानन्द।
रामनरेशाचार्य पद, नमन करूँ सानन्द ॥२॥

भरत लखन रिपुदमन सिय, जगन्नाथ श्रीराम।
वानरेश लङ्केशवर, ऋक्षराज बलधाम ॥३॥
रामभक्त अञ्जनितनय, पवनपुत्र बलवान।
वैष्णवेश शिव ही हुये, स्वयं वीर हनुमान ॥४॥
एक साथ सबके चरण, कमल नमत सानन्द।
कृपा करें मुझ दीन पर, बदत 'सच्चिदानन्द' ॥५॥

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक अकारणकरुण, करुणावरुणालय, मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका स्वभाव अद्भुत है। आद्यकवि प्राचेतस महर्षि वाल्मीकिने रामायणके अयोध्याकाण्डमें वर्णन किया है।

'कदाचिदुपकारेण कृति नैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्म वत्तया ॥'(२।१।११)

अर्थात् प्रभु श्रीरामका कोई एक भी बार उपकारकर देता था तो वे उसके एक ही उपकारसे सदा सन्तुष्ट रहते थे। और अपने मनको वशमें रखनेके कारण किसीके सैकड़ों अप—

राध करने पर भी उसके अपराधोंको याद नहीं रखते थे। भगवान् श्रीराम ही परब्रह्म परमात्मा हैं. वे इस सत्य जगतके उपादान (मूल तथा निमित्त कारण) चित् अचित् देहोंसे बिशिष्ट है तथा सर्वशक्तिमान है। ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज इन छः गुणोंको 'भग' शब्दसे जाना जाता है। इन्हें ही षडबिध ऐश्वर्य भी कहते हैं।

श्रीरामजीमें उपर्युक्त छः गुण पूर्णरूपेण विद्यमान हैं। इसलिये वे साक्षात् भगवान् हैं। यथा--

'ज्ञानशक्ति वलैश्वर्य वीर्यतेजांसि षडगुणाः।
भगवत्वेनेरिताः सन्ति श्रीरामे भगवान् स तत्॥'

भगवान् श्रीरामके स्वभावको जानने वालोंमें अग्रगण्य भक्तप्रवर श्रीहनुमानजी हैं। वे श्रीमद्भागवत पुराणमें स्पष्ट-रूपेण घोषणा करते हैं—सुर हों या असुर हों; नर हों अथवा नरसे भिन्न हों, सबको सर्वप्रकारेण सुकृतज्ञोंमें उत्तम मनुष्या-कृतिसे युक्त भगवान् श्रीरामका ही भजन करना चाहिए। क्योंकि वे ही श्रीभगवान् समस्त उत्तर कौशलके निवासियोंको अपने निजधाममें ले गये थे। यथा-

'सुरोऽसुरो वाप्यथवा नरोनरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम्।
भजेत् रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत् कोशलान्दिवम्॥'
(भाग० ५।१९।८)

प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद गोस्वामी तुलसीदासजीने राम-चरितमानसमें श्रीरामके स्वभावका यत्र-तत्र वर्णन किया है। मानसमें जहाँ-जहाँ श्रीराम स्वभावका निरूपण हुआ है वह क्रमवद्ध नीचे दिया जाता है।

[१] सर्वप्रथम भगवान् श्रीरामने ही अपने स्वभाव का वर्णन स्वतः किया है। प्रसङ्ग है-मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु श्रीराम जब अपने अनुज लक्ष्मणजीके साथ महाराज जनककी

पुष्प वाटिकामें गुरु पूजन हेतु पुष्प लेने जाते हैं तो वहाँ सखियों सहित श्रीजनकनन्दनी श्रीजानकीजी भी गौरी पूजनके लिये आती हैं, वहाँ उन्हें देखकर श्रीरघुनाथजीका मन जनक-किशोरीजीका चिन्तन करने लगता है। उस समय वे अपने प्रिय अनुज लक्ष्मणजीसे अपना मनोभाव निःसङ्कोच व्यक्त करते हुए कहते हैं-

'जासु बिलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोरमन छोभा।।
सो सब कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभद अंग सुनुभ्राता।।
रघुबंशिन कर सहज सुभाऊ। मन कुपथ पग धरइ न काऊ।।
मोहि अतिशय प्रतीति मनकेरी। जेहु सपने पर नारि न हेरी।।
जिन्हके लहही न रिपु रन पीठी। नहीं लावहिं परतिय मनदीठी।।'
[मा० १।२३१।३-७]

ऊपरके उदाहरणमें श्रीभगवान्ने अपना स्वभाव सर्वदा सदाचार परायण रघुवंशियोंके माध्यमसे व्यक्त किया है साथ ही सम्पूर्ण मानवको यहाँ ज्ञान संदेश दिया है कि जो समरांगणमें अपनी हार न चाहते हों उन्हें पराई स्त्रियोंसे अपनेको सर्वदा पृथक रखना चाहिये।

[२] आगे जब फुलवारीसे सुमनचयन करके गुरुदेव विश्वामित्रजीके पास भगवान् श्रीराम पुष्प देने हेतु जाते हैं तो वहाँ भी अपने सरल स्वभावके अनुसार पुष्प वाटिकाकी सारी घटना सुनाते हैं। यथा—

'राम कहा सब कौशिक पाही। सरल सुभाव छुआ छल नाहीं।।
सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही। पुनि अशीश दुहु भाइन्ह दीन्ही।।
सुफल मनोरथ होइ तुम्हारे। राम लखन सुनि भये सुखारे।।'
[मा० १।२३७।२-४]

यहाँ भी भगवान् श्रीरामने एक विशेष शिक्षा दी है, शिष्योंको चाहिए कि वे अपने गुरुदेवसे मनमें कुछ भी कपट

न रखकर शुद्ध हृदयसे अपनी सारी मनोकामना व्यक्त कर दे। शुद्ध हृदयी शिष्यकी मनःकामना श्रीगुरुदेव महाराजकी कृपासे पूर्ण हो जाती है।

[३] आगे चलकर धनुषभङ्गके पश्चात् जब परशुरामजीका आगमन होता है तो उन्हें देखते ही सभी राजा भयभीत हो जाते हैं। शिव धनुष तोड़ा हुआ देखकर वे बहुत क्रोधित हो जाते हैं। जब वे लक्ष्मणजी एवं श्रीरामचन्द्रजीके समझाने पर भी अपने क्रोध–हठका त्याग नहीं करते हैं तो अन्तमें भगवान् श्रीराम अपने स्वभावका दृढ़तापूर्वक परिचय देते हैं। यथा—

'देव दनुज भूपति भटनाना। समबल अधिक होइ बलवाना॥
जौ रन हमहि प्रचारइ कोऊ। लरहिं सुखेन काल किन होऊ॥
छत्रिय तनुधरि समर सकाना। कुल कलंक तेहि पामर जाना॥
कहउँ सुभाव न कुलहि प्रशंशी। कालहु डरहिं न रन रघुबंशी।'
[मा० १।२८४।१–४]

यहाँ भगवान् श्रीरामसे यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्यको शतपथसे कभी विचलित नहीं होना चाहिये और किसीसे भयभीत भी नहीं होना चाहिये।

[४] भगवान् श्रीरामके शील स्वभावको अयोध्यानरेश श्रीदशरथजी महाराज पूर्णतः जानते थे। जब जनकजीके दूतोंने परशुरामके जानेके बाद अयोध्या जाकर श्रीचक्रवर्तीजीसे महाराज जनकजीका संदेश सुनाया, साथ ही साथ पत्र भी प्रदान किया। तब उस पत्रको महाराजने स्वयं अपने हाथसे ग्रहण किया। पत्र पढ़ते–पढ़ते सम्राट श्रीदशरथजी पुलकित हो गये और आनन्दविभोर होकर उन्होंने अपने पास ही यथेष्ट आसन पर बिठाकर बड़े प्रेमसे पूँछा। यथा—

'तब नृप दूत निकट बइठारे। मधुर मनोहर बचन उचारे॥'

'भइया कहहु कुशल दोउ बारे। तुम नीके निज नयन निहारे।।
श्यामल गौर धरे धनुभाथा। वयकिशोर कौशिक मुनि साथा।।
पहिचानहु तो कहहु सुभाऊ। प्रेम विवश पुनि पुनि कहराऊ।।

[५] आइये अब विवाह मण्डपमें चलें, जहाँ सौन्दर्य सिन्धु श्रीराघवेन्द्र सरकार दूल्हा रूपमें विराजमान हैं। अखिल ब्रह्माण्ड नियामक भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी वैवाहिक लीला अवलोकनार्थ जगद्गुरु ब्रह्मा पार्वती वल्लभ श्रीमहादेव और वैकुण्ठ बिहारी श्रीमन्नारायण अपनी प्राणवल्लभाओं सहित वेष परिवर्तन करके उपस्थित हो गये थे। साथ ही अग्नि, यमराज, वरुण, पवन, चन्द्र, सूर्य एवं शचीपति सुरेन्द्रादि भी दर्शनार्थ पधार चुके थे। जब मण्डपमें उन समस्त देवोंको बिना पहिचाने ही सम्मानपूर्वक आसन देकर बैठाया गया। तब उस समय सबको मान देने वाले मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु श्रीरामजीने उन समग्र देवोंकी मानसिक वन्दना करके मानसिक आसन प्रदान किया। त्रिभुवननाथ श्रीरामजीका उदार स्वभाव देखकर समस्त देवगण बहुत प्रसन्न हुए। गोस्वामीजीने इस प्रसंगको इस प्रकार लिखा है–

'बिधि हरिहर दिशिपति दिनराऊ। जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ।।'
कपट बिप्रवर वेष बनाये। कौतुक देखहिं अति सचुपाये।।
पूजे जनक देव सब जाने। दिये सुआसन बिनु पहिचाने।।'
छं०–पहिचान को केहि जान सबहिं अपान सुधि भोरी भई।।
आनन्द कन्द बिलोकि दूलह उभय दिशि आनन्द मई।।
सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दये।।
अवलोकि शील सुभाव प्रभु को बिबुध मन प्रमुदित भये।।'
दो०–रामचन्द्र मुखचन्द्र छबि, लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल, प्रेम प्रमोद न थोर।।'

[मा० १।३२१।६–८]

[६] जब भगवान् श्रीसीतारामजीका विवाह सम्पन्न हो गया, चारों दूल्हा सरकार चारों दुल्हनोंके साथ श्रीअवध आये। भगवान् श्रीराम एवं अन्य उनके तीनों भाइयोंका विवाह पच्चीस वर्षकी अवस्थामें हुआ था। जनकनन्दनी श्री जानकी एवं उनकी अन्य तीनों बहनें भी पूर्ण युवती थीं। उनकी उम्र अठारह वर्षोंकी थीं। विवाहोपरान्त द्वादश वर्षों तक भुवन मोहन जगन्नाथ श्रीरामने समग्र प्रजाका रञ्जन-रक्षण किया। समस्त अवधवासी भगवान् श्रीरामके क्रिया-कलापोंसे पूर्ण सन्तुष्ट थे। चक्रवर्ती सम्राट् श्रीदशरथजी अपने प्राणधन श्रीराघवके शील-स्वभावको देखते हुये सर्वदा प्रसन्न रहते थे। प्रियदर्शी श्रीराजकुमार श्रीरामका स्वभाव, शील, सौन्दर्य एवं अनन्त गुणोंको देखकर-सुनकर मन-ही-मन वे मुदित होते रहते थे। यथा-(२।१।८)

'राम रूप गुन शील सुभाऊ। प्रमुदित होंहि देखि सुनि राऊ।'

सबके उर अभिलाष अस, कहहिं मनाइ महेश।
आपु अछत जुबराज पद, रामहिं देहु नरेश।'

[७] इसके पश्चात् महाराज श्रीदशरथजीने अपने प्रिय पुत्र श्रीरामको युवराज पद देनेकी कामना करके गुरुदेव श्रीवशिष्ठजीसे विचार विमर्श किया। उनकी आज्ञा पाकर ब्रह्मर्षि वशिष्ठजीको श्रीरामजीके पास आवश्यक सन्देश देने भेज दिया। भगवान् श्रीरामने श्रीसीताजीके साथ विधिवत पूजा किया और अत्यन्त स्नेहमय शब्दोंमें प्रार्थना किया। ऋग्वेदीय मन्त्रद्रष्टा ब्रह्मर्षि वशिष्ठजीका हृदय श्रीरामके स्वभावको देखकर द्रवित हो उठा। वे आनन्द विभोर होकर श्रीराघवेन्द्रके शील-स्वभाव, सौन्दर्य एवं गुणों की सराहना करने लगे।

गोस्वामीजीने इस प्रसंगको इस प्रकार लिखा है—

'तब नरनाह बशिष्ठ बुलाये । रामधाम शिख दैन पठाये ।।
गुरुआगमन सुनत रघुनाथा । द्वार आइ पद नायउ माथा ।।
सादर अरघ देइ घर आने । सोरह भाँति पूजि सनमाने ।।
गहे चरन सिय सहित बहोरी । बोले राम कमल कर जोरी ।।
सेवक सदन स्वामि आगमनू । मंगल मूल अमंगल दमनू ।।
तदपि उचितजन बोलि सुप्रीती। पठइय काज नाथ असि नीती ।।
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू । भयउ पुनीत आजु यह गेहू ।।
आयसु होइ सो करउँ गोसाईं । सेवक लहइ स्वामि सेवकाई ।।'

[२।८।१-८, १०।१]

आगे जब देवमायासे प्रेरित होकर रूठी हुई महारानी कैकेयीने कोपभवनमें महाराज दशरथसे अपने पुत्र भरतको अयोध्याका राज्य और कौशल्या नन्दन श्रीरामके लिये तपस्वी वेषमें चौदह वर्षोंका वनवास माँगा तो श्रीदशरथजी शोक संतप्त हो गये । वे अपनी मझली रानी कैकेयीको श्रीराघवेन्द्रके शील-स्वभावका स्मरण कराके समझाने लगते हैं। यथा—

'राम शपथ शत कहऊँ सुभाऊ । राम मातु कछु कहेउ न काऊ ।।
ये सब कीन्ह तोहि बिनु पूँछे । ताते परेउ मनोरथ छूँछे ।।
रिसि परिहरु अब मंगल साजू । कछु दिन गये भरत जुबराजू ।।
एकहि बात मोहि दुख लागा । बर दूसर असमंजस माँगा ।।
अजहूँ हृदय जरत तेहि आँचा । रिस परिहास कि साँचहुँ साँचा।।
कहु तजि रोष राम अपराधू । सब कोउ कहहि राम सुठि साधू।।
तुहूँ सराहसि करसि सनेहू । अब सुनि मोहि भयउ सन्देहू ।।
जासु सुभाव अरिहु अनुकूला । सो किमि करहि मातु प्रतिकूला।।'

[मा० २।३२।१-८]

[८] उसी कोपभवनमें जब मान्यवर श्रीसुमन्तजी

श्रीरामजीको बुलाकर ले आये। उस समय श्रीरामने महा-राज और कैकेयीकी स्थिति देखी तो अवाक् रह गये। इस लीलाकालीन जीवनमें प्रियदर्शी राजकुमार श्रीरामने अभी तक ऐसा दुःखमय जीवन नहीं देखा था और सुना भी नहीं था। फिर भी भगवान श्रीरामने अपने धैर्यजनित स्वभावका अद्भुत परिचय दिया। गोस्वामीजीने इस करुण प्रसंगको इस प्रकार लिखा है--

'जाइ दीख रघुबंशमनि, नरपति निपट कुसाज।
सहमि परेउ लखि सिंहिनिहिं, मनहुँ बृद्ध गजराज॥'३९॥

'सूखहिं अधर जरइ सब अंगू। मनहुँ दीन मनिहीन भुजंगू॥
सरुख समीप दीख कैकेई। मानहुँ मीच घरी गनि लेई॥
करुनामय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुख सुना न काऊ॥
तदपि धीरधरि समय बिचारी। पूँछी मधुर बचन महतारी॥
मोहिंकहु मातु तात दुखकारन। करिअजतन जेहि होइ निवारन॥'
(मा० २।४०।१-५)

(१०) इस प्रकार श्रीरामका स्वभाव बहुतोंने स्मरण किया है। आगे चलकर रामानुज श्रीलक्ष्मणजी जब अपनी माता सुमित्राजीसे वन जानेकी आज्ञा लेते हैं तब करुणामयी माता सुमित्राने श्रीसीतारामजीके शील एवं सौन्दर्यका बार-बार वर्णन किया। चक्रवर्तीजीका श्रीरामके प्रति अपार स्नेह और महारानी कैकेयीकी कुटिल मन्त्रणा स्वरूप कोपभवनमें छलपूर्वक वरदान माँगे जानेकी प्रक्रिया जानकर अपना शिर पीटने लग जाती हैं। यथा-

'समुझि सुमित्रा रामसिय, रूप सुशील सुभाव।
नृपसनेह लखि धुनेउ शिर, पापिन कीन्ह कुदाँव॥७३॥

(११) महाराज श्रीदशरथजी तो अन्तिम क्षणोंमें भी बार-बार श्रीरामजीका गुण, शील, स्वरूप और सहज स्वभावका

चिन्ता-स्मरण करते रहे। श्रीराघवेन्द्रका शील स्वभाव उनके हृदयमें अपूर्व स्थान ले चुका था। वे बार-बार अपने प्रिय सचिव सुमन्तजीसे श्रीसीतारामजी एवं लक्ष्मणजीका सन्देश पूँछ रहे थे। उस समय भी उनके हृदयमें बन यात्राकालीन श्रीरामकी मुखमुद्रा विराजमान थी।

'देखि सचिव जय जीव कहि, कीन्हेउ दण्ड प्रनाम।
सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति, कहु सुमन्त्र कहँ राम ।'१४७।।
भूप सुमंत्र लीन्ह उर लाई। बूड़त कछु अधार जनु पाई।।
सहित सनेह निकट बइठारी। पूँछत राउ नयन भरि बारी।।
राम कुशल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथ लखन बैदेही।।
आने फेरि कि बनहिं सिधाये। सुनत सचिव लोचन जल छाये।।
शोक बिकल पुनि पूँछ नरेशू। कहु सिय राम लखन संदेशू।।
रामरूप गुन शील सुभाऊ। सुमिरिसुमिरि उर सोचतराऊ।।
राज सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरस हरासू।।
सो सुत बिछुरत गये न प्राना। को पापी जग मोहिं समाना।।

(१२) इसके पश्चात् जब श्रीरामके बियोगके फलस्वरूप महाराज श्रीदशरथजीका प्राणोत्सर्ग हो गया तो गुरुदेव श्रीवशिष्ठजीने भरत एवं शत्रुघ्नको दूत द्वारा संदेश भेजकर कैकेय देशसे बुलवाया। महाराज श्रीचक्रवर्तीजीकी अन्त्येष्टि क्रिया एवं शेष सारे क्रिया-कलापोंको सम्पन्न करनेके पश्चात् राज्यसभामें जब ब्रह्मर्षि श्रीबशिष्ठजी भरत शत्रुघ्नसे पिछली सारी कहानी सुनाने लगे। उस समय सर्वप्रथम महाराज दशरथका सत्यव्रत एवं उनके हृदयमें विराजमान श्रीरामस्नेहका स्मरण किया। किन्तु जब राघवेन्द्रका गुण, शील एवं सरल स्वभाव सुनाने लगे तो ब्रह्मर्षिके नेत्र प्रेमाश्रुसे भर गये और पुलकितचित्त होकर लक्ष्मण और श्रीकिशोरीजीका श्रीरामके प्रति अपूर्व स्नेहका वर्णन करते हुए स्नेह-शोकमें निमग्न हो गये।

उसका सम्पूर्ण ज्ञान सिथिल हो गया। ऐसा था भगवान् राघवेन्द्रका सरल स्वभाव—

'पितुहितभरतकीन्हिजसिकरनी। सोमुख लाख जाइ नहि बरनी।।
सुदिन शोधि मुनिवर तब आये। सचिव महाजन सकल बुलाये।।
बइठे राजसभा सब जाई। पठये बोलि भरत दोउ भाई।।
भरत बशिष्ठ निकट बइठारे। नीति धरममय बचन उचारे।।
प्रथम कथा सन मुनिबर बरनी। कैकेइकुटिल कीन्हि जसिकरनी।।
भूप धरमब्रत सत्य सराहा। जेहि तनु परिहरि प्रेम निबाहा।।
कहत राम गुन शील सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ।।
बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी। शोक सनेह मगन मुनिग्यानी।।'
(मा० २।१७०।१-८)

(१३) पुनः उसी राज्यसभामें जब श्रीवशिष्ठजीने श्रीभरतसे अयोध्याका राज्य ग्रहण करनेको कहा तथा मन्त्रियों ने-राज्यसभासदोंने माता कौशल्याजीने भी इसका अनुमोदन किया। उस समय श्रीभरतजीने सबको यथोचित उत्तर देकर सन्तुष्ट किया और वे भगवान् श्रीसीतारामजीको वनसे लौटानेकी बात कहने लगे। उस समय उन्हें परम शीलवान, संकोचवान एवं अत्यन्त सरल स्वभाव वाले रघुनाथजीका स्मरण हो आया। प्रेममूर्ति श्रीभरतजी श्रीरामका करुणामय स्वभाव जानते थे। वे भगवानके गुणोंका स्मरण करके भाव विभोर हो उठे। यथा—

'डर न मोहिजग कहिहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिन सोचू।।
एकइ उर बश दुसह दवारी। मोहिलगि भे सियरामदुखारी।।
जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि रामचरन मनलावा।।
मोर जनम रघुवर बन लागी। झूँठ काह पछिताउँ अभागी।।'
दो०-आपनि दारुन दीनता, कहउँ सबहि शिर नाइ।
देखे बिनु रघुनाथ पद, जिय कइ जरनि न जाइ।।'१८१।

'आन उपाय मोहि नहि सूझा। को जिय कइ रघुबर बिनु बूझा ।।
एकहि आँक इहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं ।।
जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भइ मोहि कारन सकल उपाधी ।।
तदपि शरन सनमुख मोहिदेखी। छमि सब करिहहि कृपा बिशेषी।।
शील सकुचिसुठि सरलसुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ ।।
अरिहुकअनभलकीन्हन रामा। मैं शिशु सेवक जद्यपि बामा ।।
तुम पै पाँच मोर भल मानी। आयसु आशिष देहु सुबानी ।।
जेहिसुनि बिनयमोहिजनजानी। आवहि बहुरि राम रजधानी ।।'

(मा० २।१३८।१—८)

[१४] पुनः आगे चित्रकूटके यात्रा कालमें जब श्री-भरतजी श्रृंगवेरपुर पहुँचे और रात्रिकालमें जब श्रीराम शय्या पर कुशाकी साथरीका दर्शन किये तो उन्हें भगवान् श्रीरामके सौन्दर्य, शील एवं अनोखे गुणोंका स्मरण हो आया। उन्हें बार-बार श्रीसीताजी एवं श्रीलक्ष्मणजीकी कोमलताका स्मरण हो रहा था। श्रीभरतजीका सहज स्नेह उबल पड़ा। यथा—

दो०—पति देवता सुतीय मनि, सीय साथरी देखि।
बिहरतिहृदय न हहरिहर, पवितें कठिन बिशेषि ।।१९८।।

'लालन जोग लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहि न होने ।।
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहि प्रान पियारे ।।
मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तातिबायु तन लाग न काऊ ।।
ते बन सहहि बिपति सबभाँती। निदरे कोटि कुलिश एहि छाती।।
राम जनमिजग कीन्ह उजागर। रूप शील सुख सब गुन आगर ।।
पुरजन परिजन गुरु पितु माता। राम सुभाव सबहि सुखदाता ।।
बैरिउ राम बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि बिनयमनहरहीं।।
शारद कोटि कोटि शत शेषा। कर न सकहि प्रभु गुनगन लेखा।।'

दो०—सुख स्वरूप रघुबंशमनि, मङ्गल मोद निधान।
तेउ सोवत कुश डासि महि, बिधिगति अतिबलवान ।।

(मा० २।१९९।१-८)

[१५] भगवान् श्रीरामके स्वभावका स्मरण देवगुरु श्रीबृहस्पति जीने भी किया था। जब देवेन्द्रने भरत और श्रीरामका मिलन न होने पावे, इसके लिये प्रयत्न करना चाहा तो परम बुद्धिमान श्रीबृहस्पतिजीने इन्द्रको समझाते हुए श्रीरघुनाथजीके अनोखे स्वभावकी चर्चाकी। यथा—

'बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने। सहसनयन विनु लोचन जाने।।
कह गुरुबादि छोभ छल छाँड़ू। इहाँ कपट करि होइहि भाँड़ू।।
मायापति सेवक सनमाया। करइ त उलटि परइ सुरराया।।
तब किछु कीन्ह रामरुख जानी। अब कुचालि करि होइहि हानी।।
सुनु सुरेश रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ।।
जो अपराध भक्त कर करई। राम रोष पावक सो जरई।।
लोकहु बेद बिदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरबासा।।
भरत सरिस को राम सनेही। जग जप राम राम जप जेही।।'

[१६] आगे जब श्रीभरतजी चित्रकूटके पास पहुँचते हैं तो अपनी पिछली करनीकी याद करके शोक संतप्त हो जाते हैं। भगवान् श्रीसीताराम एवं लक्ष्मणजीके वनगमनमें अपनेको प्रधान कारण मानकर उनके पाँव आगे बढ़नेसे रुक जाते हैं। उस समय उन्हें ऐसा लगता है कि वे श्रीरघुनाथजीके पास जानेके योग्य नहीं हैं। ऐसा सोचकर वे पीछेकी ओर लौटने लग जाते हैं। किन्तु जब श्रीरघुनाथजीके सरल एवं सहज स्वभावका स्मरण होने लगता है तो उनके पाँव आगेकी ओर शीघ्रतापूर्वक बढ़ने लगते हैं। यथा—

'समुझि मातु करतब सकुचाहीं। करत कुतर्क कोटि मन माहीं।।
राम लखन सिय सुनि ममनाऊँ। उठि जनि जाहिं अनत तजि ठाऊँ।।
दो०—मातुमते महँ मानि मोहि, जो कछु करहिं सो थोर।
अघअवगुनछमिआदरहिं, समुझि आपनी ओर।।२३२।।
'जौं परिहरहिं मलिन मन जानी। जौ सनमानहिं सेवक मानी।'

'मोरे शरन राम की पनहीं। राम सुस्वामि दोष सब जनहीं ।।
जग जश भाजन चातक मीना। नेम प्रेम निज निपुन नवीना ।।
अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेह सिथिल सब गाता।।
फेरत मनहिं मातु कृत खोरी। चलत भक्ति बल धीरज धोरी ।।
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ ।।
भरत दशा तेहि अवसर कइसी। जलप्रवाह जलअलि गति जइसी।।
देखि भरत कर सोच सनेहू। भा निषाद तेहि समय विदेहू ।।'
[२।२३३।१-८]

[१७] चित्रकूटकी सभामें सबके समक्ष श्रीभरतजीने स्पष्ट रूपसे कहाकि मैं अपने स्वामी श्रीरामजीका स्वभाव जानता हूँ। प्रभु अपने प्रति किये गये अपराधको याद नहीं रखते। वे कभी भी अपने अपराधियोंपर क्रोध नहीं करते। मुझपर तो प्रभुकी कृपा सर्वदासे ही रही है। बचपनसे ही मुझे उनका दुलार मिला है। मेरे दोनों नेत्र प्रभुके दर्शन हेतु सर्वदा अतृप्त रहते हैं। यथा—

'सुनि मुनि वचन राम रुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई ।।
लखि अपने शिर सब छरभारू। कहिनसकहि कछु करहिं विचारू
पुलक शरीर सभा भे ठाढ़े। नीरज नयन नेह जल बाढ़े ।।
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहिते अधिक कहउँ मैं काहा ।।
मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोप न काऊ ।।
मो पर कृपा सनेह विशेषी। खेलत खुनिश न कबहूँ देखी ।।
शिशुपन ते परिहरेउ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू।।
मैं प्रभु कृपा रीति जिय जोही। हारिहु खेल जितावहिं मोहीं ।।'
दो०—महूँ सनेह सकोचवश, सनमुख कहेउ न बैन।
दरशन तृप्ति न आजु लगि, प्रेम पियासे नैन ।।
[मा० २।२५६।१-८]

[१८] पुनः आगे चलकर श्रीभरतजीने श्रीरघुनाथजीके

स्वभावकी चर्चाकी है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके स्वभावको उन्होंने देववृक्ष-कल्पतरुके समान बताते हुये कहा। जैसे कल्पवृक्षके नीचे जाकर कोई विमुख नहीं लौटता उसी प्रकार इस उदार दरवारसे कोई खाली हाथ नहीं लौटता। यथा—

'देव देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख विमुख न काहुहि काऊ॥'
दो०—जाइ निकट पहिचान तरु, छाँह समन सब सोच।
माँगत अभिमत पाव फल, राव रङ्क भल पोच॥'२६६॥

[१९] सम्पूर्ण अयोध्यावासी भी भक्त कुलवर्द्धन भगवान् श्रीरामके शील, सङ्कोच एवं करुणामय सरल-स्वभावकी सराहना करते हैं। उनकी मङ्गलमयी कामना गोस्वामीजीने इस प्रकार व्यक्त किया है। यथा—

'राजा राम जानकी रानी। आनन्दअवधि अवधरजधानी॥
सुबस बसइ फिरि सहित समाजा। भरतहिराम करहि जुवराजा॥
एहि सुख सुधा सींचि सब काहू। देव देहु जग जीवन लाहू॥
दो०—गुरु समाज भाइन सहित, रामराज पुर होइ।
अछत राम राजा अवध, मरिअ माँग सब कोइ॥२७२॥
'सुनि सनेहमय पुरजन बानी। निदहिंजोग विरति मुनि ज्ञानी॥
एहिबिधिनित्य करमकरिपुरजन। रामहिंकरहिं प्रनाम पुलकितन॥
ऊँच नीच मध्यम नर नारी। लहहिं दरश निजनिज अनुहारी॥
सावधान सबहीं सनमानहिं। सकल सराहत कृपानिधानहिं॥
लरिकाइहि ते रघुबर बानी। पालत प्रीति रीति पहिचानी॥
शील सँकोच सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ॥
कहत राम गुन गन अनुरागे। सब निजभाग सराहन लागे॥
हम सब पुन्य पुंज जग थोरे। जिन्हहि राम जानत करि मोरे॥
(मा० २।२७३।१-८)

[२०] भक्तवत्सल भगवान्का शील-स्वभाव अद्भुत एवं महान् है। चित्रकूटकी सभामें श्रीरघुनाथजी हृदयसे

चाहते थे कि सभी लोग श्रीअवध लौट जाय और मैं पिताश्री-की वनवास विषयक आज्ञा पूरी करके ही लौटूँगा। किन्तु प्रभुका इतना सँकोची स्वभाव था कि किसीसे कुछ कह नहीं पाते थे। श्रीवशिष्ठजीके पास जाकर प्रभुने एकान्तमें अपना अभिप्राय कहा। सुनते ही श्रीवशिष्ठजीका चित्त सहज ही पिघल उठा और वे प्रभुका सरल शील-स्वभाव देखकर पुल-कित हो गये, ब्रह्मर्षि श्रीवशिष्ठजीने स्पष्ट घोषणा किया कि तुम्हारे विना सम्पूर्ण सुख, ऐश्वर्य नरकके समान है। प्रसङ्ग इस प्रकार है—

'गे नहाइ गुरु पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई॥
नाथ भरत पुरजन महतारी। शोक विकल बनबास दुखारी॥
सहित समाज राउ मिथिलेशू। बहुत दिवस भे सहत कलेशू॥
उचित होइ सो कीजिअ नाथा। हित सबहीं कर रउरे हाथा॥
अस कह अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि शील सुभाऊ॥
तुम विन राम सकल सुख साजा। नरक सरिस दुहुँ राज समाजा॥
दो०—प्रान-प्रान के जीव के, जिव सुखके सुखरास।
तुम तजि तात सुहात गृह जिन्हहिं तिन्हहिं बिधिबाम॥'

[मा० २।२८९।३-८]

[२१] इसके पश्चात् श्रीवशिष्ठजीने राजर्षि जनक-जीसे श्रीरामका कथन सुनाया और उनके शील एवं स्नेहमय स्वभावकी चर्चाकी। यथा—

'करि प्रनाम तब राम सिधाये। रिषि धरि धीर जनक पहिं आये॥
राम वचन गुरु नृपहिं सुनाये। शील सनेह सुभाय सुहाये।
महाराज अब कीजिअ सोई। सबकर धरम सहित हित होई॥'

[२२] श्रीगुरुदेव महाराजका वचन सुनकर राजर्षिने मन ही मन कुछ विचार किया और, निश्चय करके, श्रीभरतसे मिले। भरतजीसे राजा जनकने श्रीरामके स्वभावके सम्बन्धमें

कहा । भरत तुम्हें तो करुणामय श्रीरघुनाथका स्वभाव तो पता ही है । अतः अब विचार पूर्वक जो करना हो कहो । उस समय श्रीरामजीके स्नेहमय शील-स्वभावका प्रभाव श्रीजनक-जी पर पूर्णतः पड़ चुका था । अब वे श्रीरघुनाथजीकी इच्छा-नुसार वहाँ से लौटनेको तैयार हो गये थे—

'समय समुझि धरि धीरज राजा । चले भरत पहिं सहितसमाज।।
भरत आइ आगे होइ लीन्हे । अवसर सरिस सुआसन दीन्हे।।
तात भरत कह तिरहुत राऊ । तुम्हहिं बिदित रघुबीर सुभाऊ।।
दो०-राम सत्यब्रत धरमरत, सब कर शील सनेहु ।
संकट सहत सँकोचबश, कहहु जो आयसु देहु ।।'२।२९६-२

[२३] अन्तमें श्रीभरतजीने स्नेह हठका परित्याग कर दिया एवं श्रीरामके आज्ञा पालनका निश्चय कर लिया । उस समय श्रीराम एवं श्रीभरतका पारस्परिक स्नेहोपकथन सुनकर देवगण पुष्पोंकी वर्षा करने लगे, साथ ही श्रीराम भरत दोनोंका जयद्घोष भी करने लगे । उस अवसर पर भरत एवं श्रीरामका पारस्परिक स्नेह देखकर वशिष्ठजी समस्त नागरिक एवं राजर्षि श्रीजनकजी भाव विभोर हो गये । सेवक एवं स्वामीके सुन्दर स्वभावके सम्बन्धमें एक ही साथ सरा-हना करते हुये उस समय राजर्षि जनक सचमुच बिदेह हो गये-

दो०-भरत राम सम्बाद सुनि, सकल सुमङ्गल मूल ।
सुर स्वारथी सराहि कुल, बरसत सुरतरु फूल ।।
[मा० २।३०७]

धन्य भरत जय राम गुसाईं । कहत देव हरषत बरिआईं ।।
मुनि मिथिलेश सभा सब काहू । भरत बचन सुनि भयउ उछाहू ।।
भरत राम गुन ग्राम सनेहू । पुलकि प्रशंसत राउ बिदेहू ।।
सेवक स्वामि सुभाव सुहावन । नेम प्रेम अति पावन-पावन ।।'
मति अनुसार सराहन लागे । सचिव सभासद सब अनुरागे ।।'

[२४] आगे चलकर श्रीराघवेन्द्र दण्डकवन होते हुये पञ्चवटीमें पहुँचे तो वहाँ गीधराज जटायुसे भेंट हुई। जब श्रीजानकीजीके अपहरण कालमें श्रीजटायुने रावणसे घोर युद्ध किया तथा अन्तमें रावणके द्वारा क्षत-बिक्षत होकर धरती पर गिर पड़े और रामका नाम स्मरण करने लगे। उस समय प्रभुने लक्ष्मण सहित पहुँच कर उनकी सेवा शुश्रुषा की। अपने भक्तको कृतार्थ करनेके लिये भगबान्‌ने उन्हें गोदमें बैठा लिया। अन्तमें गीधराज जटायुने नश्वर शरीरका परित्याग करके दिव्य स्वरूप ग्रहण कर लिया और उन्होंने प्रभु श्रीरामकी स्तुति की। स्तुति करते समय भक्तराज जटायुके हृदयमें राघवेन्द्र श्रीरामका स्वरूप, सहज स्वभाव प्रगट हो गया। वे प्रभुके अगम-सुगम स्वभावका गुणगान करने लगे। उन्होंने परम दयालु स्वभाव वाले प्रभु श्रीरामको अपने हृदयमें वसानेकी कामना व्यक्त की। यथा-

'जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम शीतल सदा।
पश्यंति यं योगी जतन करि करत मन गोवश सदा॥
सो राम रमा निवास सन्तत दास वश त्रिभुवन धनी।
मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी॥
[३।३१६-४]

[२५] भगवान् श्रीराम श्रीलखनलालजीके साथ जब आगे चलकर श्रीशवरीजीको कृतार्थ करनेके पश्चात् देवर्षि नारदजीसे मिलते हैं तो अपने प्रिय भक्त नारदजीसे रघुनाथ जी स्वयं श्रीमुखसे अपना स्वभाव बताते हुए कहते हैं। हे मुनिवर! तुम्हें तो मेरे स्वभावके विषयमें पता ही है। भला मैं अपने भक्तोंसे कभी दुराव करता हूँ?

'जानहु मुनि तुम मोर सुभाऊ। जन सन कबहुकि करउँ दुराऊ॥
कवन वस्तुअसि प्रियमोहिलागी। जो मुनिवर न सकहु तुम माँगी॥

'जन कहँ कछु अदेय नहिं मोरे। अस विश्वास तजहु जनि भोरे।।'

[२६] इसके पश्चात् भगवान् श्रीराम हनुमानजीसे मिलकर वानरराज सुग्रीवसे मित्रता करते हैं और बालिका वध करके सुग्रीवको किष्किन्धाका राज्य समर्पित करते हैं। जब सुग्रीवका राज्याभिषेक सम्पन्न हो जाता है। उस समय वैष्णव कुलभूषण शङ्करजी अपनी प्राणवल्लभा उमादेवीसे अपनी परम कृपालुताका स्मरण करके उनके सरल स्वभावका गुण-गान करके भाव विभोर होकर कहने लगते हैं। यथा—

'उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बन्धु प्रभु नाहीं।।
सुर नर मुनि सबकइ यह रीती। स्वारथलागि करहिं सव प्रीती।।
बालि त्रास ब्याकुल दिन राती। तन बहु ब्रन चिन्ताजर छाती।।
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ। अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ।।
जानतहूँ अस प्रभु परिहरहीं। काहे नबिपति जाल नरपरहीं।।'
(४।१२।–१–५)

[२७] पुनः इसके पश्चात् जब भक्तप्रवर हनुमानजी महाराज शतयोजन विस्तृत समुद्रको लाँघ कर सीता माताका दर्शन प्राप्त करके उनका सन्देश लेकर लौटते हैं और भगवान् श्रीराम श्रीकिशोरीजीके द्वारा दिये हुये स्नेह सन्देश सुनाते हैं तो भगवान् श्रीराम हनुमानजीको हृदयसे लगा लेते हैं। भक्तवत्सल राघवेन्द्रके चरण सरोजमें पड़े हुए श्रीहनुमानजीकी भावमयी स्थिति देखकर श्रीराम कथाके प्रधान प्रवक्ता श्रीशिवजी देवी उमासे आनन्द विभोर होकर श्रीरघुनाथजीके स्वभावके सम्बन्धमें ज्ञान रखने वाले भक्तोंके विषयमें एक स्पष्ट सैद्धान्तिक घोषणा करते हैं। यथा—

'उमा राम सुभाउ जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना।।
यह सम्वाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भक्ति सोइ पावा।।'
(५।३४।३–४)

[२८] जब रावणसे परित्यक्त होकर विभीषणजी श्रीरामके शरणमें आये और भगवत शरणागति ग्रहण कर लिये तो सौन्दर्यसिन्धु कमलनयन प्रभु श्रीरामजीका दर्शन करके अपने स्वभावकी सराहना करने लगे। उस समय श्रीरामजीने अपना स्वभाव स्वयं अपने मुखसे भक्तराज विभीषणजीसे कहा। अनन्त संख्यामें उपस्थित रीक्ष-वानरों अङ्गद, हनुमानादि प्रमुख भक्तों एवं अपने स्वरूपभूत श्रीलक्ष्मणजीके समक्ष भगवान श्रीरामने अपने प्रिय भक्तोंका लक्षण भी बताया। श्रीराघवेन्द्र-का स्वभाव समर्पित भक्तोंके प्रति कैसा है, यहाँ श्रीमुखवाणी-से पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है। यथा–

'सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुशुण्डि शम्भु गिरिजाऊ।।
जो नर होइ चराचर द्रोही। आवइ सभय शरन तकि मोहीं।।
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना।।
जननी जनक बन्धु सुत दारा। तन धन भवन सुहृद परिवारा।।
सब कइ ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी।।
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष शोक भय नहिं मन माहीं।।
अस सज्जन मम उर बस कइसे। लोभी हृदय बसइ धन जइसे।।
तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे। धरउँ देह नहिं आन निहोरे।।'
(५।४८।१-८)

[२९] श्रीविभीषण शरणागतिपर ही श्रीराघवेन्द्र सरकारने विभीषण और सुग्रीवके समक्ष अपने सहज स्वभाव-का वर्णन किया है। यथा–

'सत्य कहौं मेरो सहज सुभाउ।
सुनहु सखा कपिपति! लङ्कापति! तुम सन कौन दुराउ।।'
सब बिधि हीन, दीन अति जड़मति, जाको कतहुँ न ठाउँ।
आयो शरन भजौं, न तजौं तेहि, यह जानत रिषिराउ।।'

'जिनके हौं हित सब प्रकार चित, नाहिन और उपाऊ ।
तिनहिं लागि धरि देह, करौं सब, डरौं न सुजस नशाउ ।।
पुनि-पुनि भुजा उठाइ कहत हौं, सकल सभा पतिआउ ।
नहिं कोउ प्रिय मोहिं दास-सम, कपट प्रीति वहि जाउ ।।
सुनि रघुपति-के बचन विभीषण, प्रेम-मगन मन चाउ ।
'तुलसिदास' तजि आश-त्रास सब, ऐसे प्रभु कहँ गाउ ।।'

[३०] राक्षसराज रावणके द्वारा लङ्कासे निष्कासित विभीषणको भक्त वत्सल भगवान श्रीराम द्वारा लङ्काका राज्य प्रदान करनेके पश्चात ऋक्षों एवं वानरोंके दलमें भी श्रीरघुनाथके उदार स्वभावका अद्भुत प्रभाव पड़ा । सभी आनन्द विभोर होकर श्रीराघवका गुणगान करने लगे । यथा—

'रावण क्रोध अनल निज, स्वास समीर प्रचण्ड ।
जरत विभीषण राखेउ, दीन्हेउ राज अखण्ड ।। (४९क)
जो सम्पति शिव रावनहिं, दीन्हि दिये दशमाथ ;
सोइ सम्पदा विभीषनहिं, सकुचि दीन्हि रघुनाथ ।। (४९ख)
'अस प्रभु छाँड़ि भजहिं जे आना । ते नर पशु बिन पूँछ बिषाना ।।
निज जन जानि ताहि अपनावा । प्रभुसुभाव कपिकुल मनभावा ।।'

[३१] भगवान् श्रीराघवेन्द्रका उदार स्वभावका प्रभाव रावण द्वारा भेजे हुये गुप्तचर-शुक-सारण पर भी पड़ गया । वे श्रीराम दलका भेद समझनेके लिए बन्दर बन गए थे । उस बनावटी वेषमें भी रहकर उन्होंने जब अपने नेत्रोंसे उदार राघवेन्द्रके स्वभावका दर्शन किया । तो आनन्द विभोर हो उठे । वे विचार करने लगे महावली लंकेश रावणके द्वारा राज्यसे वंचित विभीषणको प्रभुने अपने अनिष्टकी किंचित भी परवाह न करके अपना प्रिय पार्षद बना लिया । यहाँ तक की लङ्काका राज्य भी प्रदान कर दिया । ब्रह्माण्डनायक सर्वसमर्थ श्रीराघवेन्द्रके सरल स्वभाव भूलकर रामका गुणगान

करने लगे । इसीसे वानरों द्वारा पकड़ भी लिये गये । जादू वही जो शिरपर चढ़कर बोलने लगे–

शत्रु भी श्रीरामके स्वभावसे प्रभावित हो जाते थे । ऐसा था श्रीराघवेन्द्र रामका स्वभाव । प्रसङ्ग इस प्रकार है–

'जबहिं विभीषन प्रभु पहिं आये । पाछे रावन दूत पठाये ।।८।।
दो०–'सकल चरित तिन देखेउ, धरे कपट कपि देह ।
प्रभु गुन हृदय सराहहिं, शरनागत पर नेह ।।५।५१।।
'प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ । अति सप्रेम बिसरि दुराऊ ।।१।।
रिपुके दूत कपिन तब जाने । सकल बाँधि कपीश पहिं आने ।।२।।

[३२] इतना ही नहीं श्रीराम प्रभावसे प्रभावित दशानन रावणके प्रधान जासूस शुक–सारण जब लखनजीके द्वारा बन्धन मुक्त हो लङ्कामें रावणके दरवारमें उपस्थित होकर श्रीराम सैन्यका भेद बताने लगे तो वहाँ भी शरणागत वत्सल श्रीरघुनाथजीके अत्यन्त कोमल स्वभावको नहीं भूल सके । उन्होंने दुष्ट दशाननके समक्ष ही भगवान् श्रीरामके गुणोंका स्पष्टतः गान किया–

'कह शुक नाथ सत्य सब बानी । समुझहु छाँड़िप्रकृतिअभिमानी ।।३
सुनहु वचन मम परिहरिक्रोधा । नाथ रामसन तजहु बिरोधा ।।४
अति कोमल रघुवीर सुभाऊ । जद्यपि अखिल लोककर राऊ ।।५
मिलत कृपा तुम पर प्रभु करिहैं । उर अपराध न एकउ धरिहैं ।।६
जनकसुता रघुनाथहिं दीजै । एतना कहा मोर प्रभु कीजै ।।७
(मा० ५।५७।३–७)

[३३] श्रीरामप्राण वल्लभा जनकनन्दनीको लंकामें भी श्रीरामजीके स्नेहमय स्वभावकी याद आती रहती थी । एक बार जब वे बहुत दुखी हो गयी थीं । तब श्रीविभीषणकी बहन राक्षसी त्रिजटाने उन्हें समझा–बुझाकर आश्वस्त किया । और स्वयं अपने निवास स्थानपर चली गयी । महामति त्रिजटा

द्वारा उदार कीर्ति श्रीराघवेन्द्रके स्वभावका वर्णन सुनकर श्रीकिशोरीजीको अपने प्राणनाथ श्रीरामजीका विशेष रूपसे स्मरण हो आया। प्रभुकी कृपालताका बार-बार स्मरण करनेसे बिदेहनन्दनी श्रीसीताजीके लिये वह रात्रि युगोंके समान व्यतीत होने लगी। तभी प्रभुकी कृपासे उन्हें शुभ शकुन होने लगे। उनके समस्त शुभ अङ्ग फड़कने लगे और उन्हें विश्वास हो गया कि अब भक्तवत्सल भगवान् श्रीरघुनाथजी शीघ्र ही मिल जायेंगे। संक्षेपमें प्रसङ्ग इस प्रकार है–(६।६६।१-६)

'अस कहि बहुत भाँति समुझाई। पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई॥
राम सुभाउ सुमिरि बैदेही। उपजी बिरह बिथा अति तेही॥
निशिहिं शशिहिं निंदति बहु भाँती। जुग सम भई सिराति न राती॥
करति बिलाप मनहि मन भारी। राम बिरह जानकी दुखारी॥
जब अति भयउ बिरह उर दाहू। फरके बाम नयन अरु बाहू॥
सगुन बिचारि धरी मन धीरा। अब मिलिहहिं कृपालु रघुबीरा॥

[३४] भगवान् श्रीसीतारामजी महाराज लक्ष्मण एवं अपने सखा वानर-भालुओंके साथ जब लंका विजयोपरान्त श्रीअवध आए। तो श्रीभगवान्का राज्याभिषेक उत्सव मनाया गया। कुछ समय पश्चात् अपने सभी सखाओं विभीषण, सुग्रीव, जाम्बवान आदि ऋक्ष-वानरोंको समादर पूर्वक विदा करनेके बाद अपने सर्वश्रेष्ठ सखा निषादराजको बुलाकर प्रसाद स्वरूप विविध प्रकारके वस्त्र एवं आभूषण प्रदान किये और घर जाकर अपना स्मरण करनेकी शिक्षा देते हुए भाव-विभोर श्रीभगवान्ने कहा–सखे! मैं तुमको बिदा नहीं कर रहा हूँ। तुम मेरे प्रिय भ्राता भरतके समान हो। मैं तुम्हें यहाँ आनेके लिये श्रृंगवेरपुर भेज रहा हूँ। अपने प्रिय मित्र निषादराजके लिये रघुनाथका द्वार हमेशा खुला रहेगा। मित्र! सदा तुम इसी प्रकार आते रहना, कहते-कहते श्रीरघुनाथजी पुलकित हो

गये । भाव–विभोर श्रीनिषादराजने सजल नेत्रोंसे श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम किया और घर पहुँच कर उदार स्वभाववाले रघुनाथजीके सम्बन्धमें समस्त प्रिय परिजनोंको एकत्र करके सुनाना प्रारम्भ किया । भक्त प्राणधन श्रीरामका सहज स्व–भाव सबको प्रभावित कर देता था—(७।२०।१-५)

'पुनि कृपाल लिय बोलि निषादा । दीन्हे भूषन बसन प्रसादा ।।
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू । मनक्रम बचन धरम अनुसरेहू ।।
तुम मम सखा भरत सम भ्राता । सदा रहेहु पुर आवत जाता ।।
बचन सुनत उपजा सुख भारी । परेउ चरन भरि लोचनबारी ।।
चरन नलिन उर धरि गृह आवा । प्रभुसुभाउपरिजनहिं सुनावा ।'

[३५] जब सभी वानर-भालु अयोध्यासे बिदा होकर अपने–अपने निवास स्थानको चले गये तब अयोध्याके केवल श्रीरामभक्त हनुमानजी ही प्रभुकी सेवामें रह गये । श्रीभगवान ने उन्हें सर्वदाके लिये अपना बना लिया । एक बार चारों भ्राता एक श्रेष्ठ उपवनमें विराजमान थे । वहीं परम भाग्य–वान श्रीमारुति व्यजन डुलानेकी सेवाकर रहे थे । उसी समय श्रीभरतजीने श्रीभगवानसे कुछ जिज्ञासा करने हेतु हनुमानजी-की ओर देखा। प्रभुश्रीभरतका भाव समझ गये और हनुमानजी से बोले—हनुमान ! क्या बात है ? निःसंकोच कहो ! तब हनुमानजीने श्रीभरतजीकी इच्छा व्यक्त किया । इस पर श्री-रघुनाथजीने भाव विभोर होकर कहा—तुम मेरे स्वभावको जानते हो । भला मुझमें और श्रीभरतजीमें कोई अन्तर भी है क्या ? भगवान् श्रीराम श्रीभरतजीसे कितना स्नेह करते थे । यहाँ स्पष्ट है । यथा–

'पूँछत प्रभुहिं सकल सकुचाहीं । चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं ।।
सुनी चहहिं प्रभु मुख कइबानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी।।

अन्तरजामी प्रभु सब जाना । बूझत कहहु काह हनुमाना ।।'
जोरि पानि कह तब हनुमन्ता । सुनहु दीनदयाल भगवन्ता ।।
नाथ भरत कछु पूँछन चहहीं । प्रश्न करत मन सकुचत अहहीं ।।
तुम जानहु कपि मोर सुभाउ । भरतहि मोहि न अन्तर काऊ ।।
सुनि प्रभु वचन भरत गहि चरना ।' (७।३६।२-८)

[३६] भगवान् श्रीरामके परम प्रेमी भक्तवर श्री-काकभुशुण्डिजीने पक्षीराज गरुड़जीसे राघवेन्द्र श्रीरामका सहज स्वभाव वर्णन किया है । श्रीरघुनाथके स्वभावका स्वरूप भिन्न भिन्न स्थलों पर भिन्न-भिन्न रूपमें दृष्टिगोचर होता रहता है। श्रीरामजी भक्तोंके अन्दर सर्वदा गुण ही देखना चाहते हैं । अत. प्रभुका एक नाम भक्तवत्सल भी है । जैसे गाय अपने बछड़ेके शरीरमें लिपटा हुआ जेर सहित मल आदि गन्दगी जीभसे चाटकर स्वच्छ कर देती है । उसी प्रकार भगवान् अपने भक्तोंके दुर्गुणोंका आहार बना लेते हैं । सर्वसमर्थ प्रभु अपने भक्तोंके अन्दर स्वल्प अभिमान भी नहीं रहने देते । भले ही भक्त निदान कालमें छटपटाने भी लगे फिर भी श्री-रामजी उसका अभिमान मिटा ही देते हैं । जैसे माता अपने बच्चेके शरीरमें निकले हुए फोड़ेको चिकित्सक द्वारा चीर-फाड़ करानेके लिये तानक भी ममता नहीं रखती । इसी प्रकार गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी यहाँ यह शिक्षा देते हैं कि ऐसे परम कृपालु भगवान श्रीरामका भजन सारा श्रम त्याग-कर इस प्रकार करना चाहिए-

'राम कृपा भाजन तुम ताता । हरिगुन प्रीति मोहिं सुखदाता ।।
ताते नहि कछु तुमहि दुरावउँ। परम रहस्य मनोहर गावउँ ।।
सुनहु रामकर सहज सुभाऊ । जन अभिमान न राखहि काऊ ।।
ससृत मूल शूलप्रद नाना । सकल शोक दायक अभिमाना ।।
ताते करहि कृपानिधि दूरी । सेवक पर ममता अति भूरी ।।

'जिमि शिशु तन व्रन होइ गुसाईं। मातु चिराव कठिनकी नाईं।।'

दो०—'जदपि प्रथम दुख पावइ, रोवइ बाल अधीर।
व्याधि नाश हित जननी, गनति न सो शिशु पीर ।।७४क।।
तिनिरघुपतिनिजदासकरि, हरहिंमान हित लागि।
'तुलसिदार' ऐसे प्रभुहिं, कस न भजहुभ्रमप्यागि।।७४ख।।

[३७] अन्तमें एक स्थान पर २७ कल्पों तक कथा कहने वाले कार्कषिका स्पष्ट उद्‌गार स्मरण करने ही योग्य है—वे अपने लम्बे जीवनकालका अनुभव बताते हुए श्रीगरुड़जी से कहते—भगवान् श्रीरामकी महिमा अनन्त है उसका पार नहीं है। शिव ब्रह्मादि देवोंसे पूजित चरणवाले श्रीरघुनाथजी मुझ दीन पर भी इतनी कृपा करते हैं जिसका मैं वर्णन तक नहीं कर सकता।

पक्षिराज ! ऐसा उदार स्वभाव वाला व्यक्तित्व मैंने नहीं देखा है। न तो किसीके द्वारा सुना ही है। अतः किसे मैं भगवान् श्रीरघुनाथके समान उदाहरण दूँ। मेरी तो यही मान्यता है कि श्रीरामके समान श्रीराम ही हैं।

मै तो स्पष्ट कहता हूँ कि चाहे कोई कितना ही उच्च कोटिका साधक वन जाय सिद्ध विभक्त उदासी कवि, विद्वान संन्यासी, योगी, शूरवीर, तपस्वी आदि श्रेष्ठसे श्रेष्ठ पद क्यों न प्राप्त कर ले, किन्तु यदि वह मेरे स्वामी श्रीरामजी-का भजन नहीं करता है तो वह निश्चय ही भव समुद्रसे नहीं तर सकता। भगवान् श्रीरामकी चरणागत पाकर मेरे जैसे अधम पापी पक्षी भी इस प्रकार शुद्ध हो जाता है तो अन्य शुद्ध व्यक्तियोंका बात ही क्या है। मैं अपने उदार अविनाशी स्वामी श्रीरामके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। हे ! पक्षिराज जिनका नाम सांसारिक घोर त्रयशूलोंसे छुटकारा दिलानेवाला औषधि है। वे प्रभु श्रीराम मेरे और आपके ऊपर सर्वदा

भव धनु भञ्जि निदरि भूपति भृगु, नाथ खाइगे ताउ ।
छमि अपराध छमाइ पाइ परि, इतो न अनत समाउ ॥५॥
कह्यो राज, बन दियो नारि बश, गरिगलानि गयो राउ ।
ता कुमातु को मन जुगवत ज्यों, निज तन परम कुघाउ ॥६॥
कपि सेवा बश भये कनौड़े, कह्यो पवनसुत आउ ।
देवे को न कछू रिनियाँ हौं, धनिक तु पत्र लिखाउ ॥७॥
अपनाये सुग्रीव विभीषन, तिन न तज्यौ छल छाउ ।
भरत सभा सनमानि सराहत, होत न हृदय अघाउ ॥८॥
निज करुना करतूति भक्त पर, चपत चलत चरचाउ ।
सकृत प्रनाम प्रनत जश बरनत, सुनत कहत फिरिगाउ ॥९॥
समुझि-समुझि गुन ग्राम रामके, उर अनुराग बढ़ाउ ।
'तुलसिदास' अनयास राम पद, पइहैं प्रेम पसाउ ॥१९॥'
(विनय पत्रिका १००)

सबका निष्कर्ष यही है कि कृपालु श्रीरामका स्वभाव जान लेने पर एकमात्र उन परम शरण्य श्रीरघुनाथजीका ही भजन करना चाहिए ।